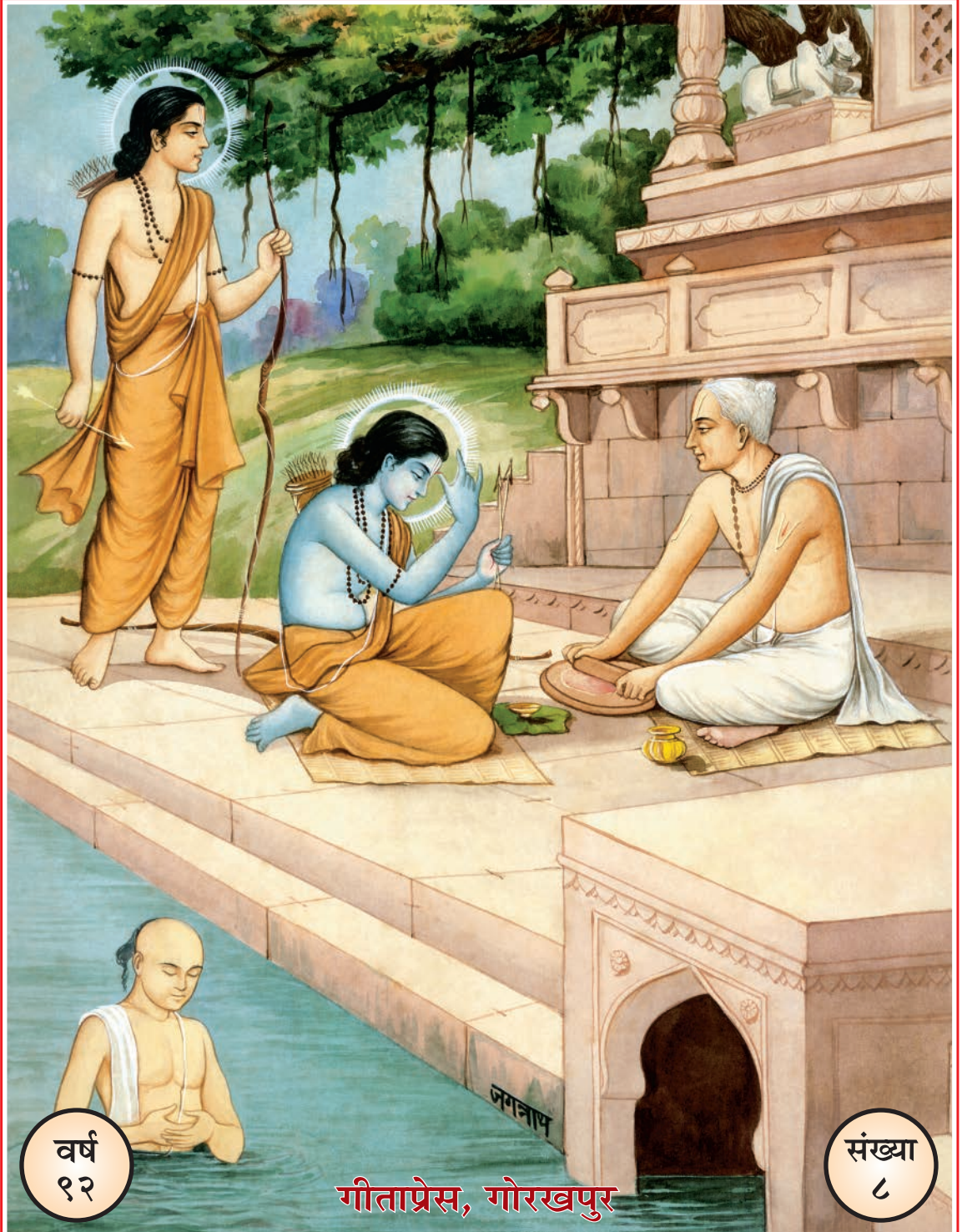


# कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष  
९२

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या  
८



COLLECTION OF VARIOUS  
-> HINDUISM SCRIPTURES  
-> HINDU COMICS  
-> AYURVEDA  
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server!



KAPWING





मुरलीधर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।  
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मानुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष

१२

गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, अगस्त २०१८ ई०

संख्या

८

पूर्ण संख्या ११०१

## ‘अधर धरि मुरली स्याम बजावत’

अधर धरि मुरली स्याम बजावत ।

सारंग, गौड़ औ नटनारायन, गौरी सुरहि सुनावत ॥ १ ॥

आपु भए रस बस ताही कैं, औरन बस करवावत ।

ऐसौ को त्रिभुवन जल थल मैं, जो सिर नाहिं धुनावत ॥ २ ॥

सुभग मुकट कुण्डल मनि स्रवनन देखत नारिनि भावत ।

सूरदास प्रभु गिरिधर नागर मुरली धरन कहावत ॥ ३ ॥

श्यामसुन्दर ओठपर रखकर वंशी बजा रहे हैं, सारंग, गौड़, नट-नारायण और गौरी आदि रागोंके स्वर (आलाप) सुनाते हैं। स्वयं उसी (वंशीध्वनि)-की मधुरताके वश हो गये हैं और दूसरोंको भी वश करा रहे हैं। तीनों लोकोंमें जल या स्थलका निवासी ऐसा कौन है, जो (वंशी सुनकर) मस्तक नहीं हिलाने लगता। (मोहनका) मनोहर मुकुट और रत्नजटित कानोंके कुण्डल देखनेमें स्त्रियोंको (अत्यन्त) प्रिय लगते हैं; सूरदासजीके चतुर स्वामी जो अबतक गिरिधर कहलाते थे, (अब) मुरलीधर कहलाते हैं। [सूरसागर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, अगस्त २०१८ ई०

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- 'अधर धरि मुरली स्याम बजावत' .....	३	१३- कर्म-मीमांसा ( श्रीरूपचन्दजी शर्मा ) .....	२४
२- कल्याण .....	५	१४- अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है [ प्रेरक कथा ] .....	२५
३- चित्रकूटके घाटपर [ आवरणचित्र-परिचय ] .....	६	१५- श्रीरामराज्यकी महिमा ( श्रीअर्जुनलालजी बंसल ) .....	२६
४- महात्माओंका प्रभाव ( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका ) .....	७	१६- मानस रोग ( श्रीगोपालदत्तजी सारस्वत ) .....	२८
५- ममताके रोगकी चिकित्सा ( मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय ) [ प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता ] .....	९	१७- श्रीरामचरितमानसमें वर्णित मानस रोग .....	३०
६- श्रीकृष्ण-लीलाके अन्ध-अनुकरणसे हानि ( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) ..	१३	१८- अहंकार : विनाशका बीज ( डॉ० गो० दा० फेगडे ) .....	३१
७- पुण्य और पाप ( श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज ) .....	१४	१९- संयमका प्रथम सोपान—वाक्-संयम [ प्रेरक-प्रसंग ] [ प्रेषक—श्रीअरुणजी गुप्ता ] .....	३२
८- सत् और असत् [ साधकोंके प्रति ] ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज ) .....	१५	२०- महात्मा पूनतानम् [ संत-चरित ] ( श्रीरामलाल ) .....	३३
९- मानसिक शक्तिके रोगोंका उपचार ( श्रीलालजी रामजी शुक्ल, एम०ए० ) .....	१७	२१- कामधेनु [ कहानी ] ( श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' ) .....	३७
१०- कर्मफलभोगमें परतन्त्रता .....	१९	२२- क्या सुख-भोग ही जीवन है ? ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज ) [ प्रेषक—श्रीहरी मोहनजी ] .....	४१
११- भक्ति और उसकी प्राप्तिके साधन ( श्रीमती विश्वमोहिनीजी, एम० ए० ) .....	२०	२३- भगवान् कृष्णका प्राकट्य ( श्रीरामेश्वरजी पाटीदार ) [ प्रेषक—श्रीअशोकजी चौरे ] .....	४२
१२- विपत्तियोंका सामना धैर्यसे करें ( श्रीरमेशचन्द्रजी बादल ) .....	२३	२४- साधनोपयोगी पत्र .....	४३
		२५- व्रतोत्सव-पर्व [ भाद्रपदमासके व्रत-पर्व ] .....	४५
		२६- कृपानुभूति .....	४६
		२७- पढ़ो, समझो और करो .....	४७
		२८- मनन करने योग्य .....	५०

## चित्र-सूची

१- चित्रकूटके घाटपर .....	( रंगीन ) .....	आवरण-पृष्ठ
२- मुरलीधर .....	( " ) .....	मुख-पृष्ठ
३- चित्रकूटके घाटपर .....	( इकरंगा ) .....	६
४- श्रीरामराज्याभिषेक .....	( " ) .....	२६
५- नहुषका स्वर्गलोकसे पतन .....	( " ) .....	५०

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय ॥  
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥  
जय विराट् जय जगत्यते । गौरीपति जय रमापते ॥

विदेशमें Air Mail }  
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 ( ₹ 3000 )  
पंचवर्षीय US\$ 250 ( ₹ 15000 )

{ Us Cheque Collection  
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : [gitapress.org](http://gitapress.org)

e-mail : [kalyan@gitapress.org](mailto:kalyan@gitapress.org)

09235400242/244

सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें ।

Online सदस्यता-शुल्क — भुगतानहेतु-[gitapress.org](http://gitapress.org) पर Online Magazine Subscription option को click करें ।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क [kalyan-gitapress.org](http://kalyan-gitapress.org) पर निःशुल्क पढ़ें ।

‘शिव’

## चित्रकूटके घाटपर



गृहस्थीसे वैराग्य होनेपर तुलसीदासजी काशीमें रामकथा कहने लगे थे। वहाँ उन्हें एक दिन एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान्जीका पता बतलाया। हनुमान्जीसे मिलकर तुलसीदासजीने उनसे श्रीरघुनाथजीका दर्शन करानेकी प्रार्थना की। हनुमान्जीने कहा—‘तुम्हें चित्रकूटमें रघुनाथजीके दर्शन होंगे।’ इसपर तुलसीदासजी चित्रकूटकी ओर चल पड़े।

चित्रकूट पहुँचकर रामघाटपर उन्होंने अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले थे। मार्गमें उन्हें श्रीरामके दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ेपर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदासजी उन्हें देखकर मुग्ध हो गये, परंतु उन्हें पहचान न सके। पीछेसे हनुमान्जीने आकर उन्हें सारा भेद बताया, तो वे बड़ा पश्चात्ताप करने लगे। हनुमान्जीने उन्हें सान्त्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे।

संवत् १६०७ की मौनी अमावस्या बुधवारके दिन उनके सामने भगवान् श्रीराम पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालरूपमें तुलसीदासजीसे कहा—‘बाबा! हमें चन्दन दो।’ हनुमान्जीने सोचा, वे इस बार भी न धोखा खा जायँ, इसलिये उन्होंने तोतेका रूप धारण करके यह दोहा कहा—

चित्रकटके घाट पर भड़ संतन की भीर।

तुलसीदासजी उस अद्भुत छबिको निहारकर शरीरकी सुधि भूल गये। भगवान्ने अपने हाथसे चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदासजीके मस्तकपर लगाया और अन्तर्धान हो गये।

संवत् १६२८ में ये हनुमान्जीकी आज्ञासे अयोध्याकी ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयागमें माघमेला था। वहाँ कुछ दिन वे ठहर गये। पर्वके छः दिन बाद एक वटवृक्षके नीचे उन्हें भरद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनिके दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकरक्षेत्रमें अपने गुरुसे सुनी थी। वहाँसे ये काशी चले आये और प्रह्लादघाट—पर एक ब्राह्मणके घर निवास किया। वहाँ उनके अन्दर कवित्वशक्तिका स्फुरण हुआ और वे संस्कृतमें पद्य-रचना करने लगे। परंतु दिनमें वे जितने पद्य रचते, रात्रिमें वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदासजीको स्वप्न हुआ। भगवान् शंकरने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषामें काव्य-रचना करो। तुलसीदासजीकी नींद उचट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान् शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदासजीने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। शिवजीने कहा—‘तुम अयोध्यामें जाकर रहो और हिन्दीमें काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वादसे तुम्हारी कविता सामवेदके समान फलवती होगी।’ इतना कहकर श्रीगौरीशंकर अन्तर्धान हो गये। तुलसीदासजी उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर काशीसे अयोध्या चले आये।

संवत् १६३१ का प्रारम्भ हुआ। उस साल रामनवमीके दिन प्रायः वैसा ही योग था, जैसा त्रेतायुगमें रामजन्मके दिन था। उस दिन प्रातःकाल श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरित-मानसकी रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिनमें ग्रन्थकी समाप्ति हुई। संवत् १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें रामविवाहके दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

इसके बाद भगवान्की आज्ञासे तुलसीदासजी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान् विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णाको श्रीरामचरितमानस सुनाया। रातको पुस्तक श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें रख दी गयी। सबेरे जब पट खोला गया तो उसपर लिखा हुआ पाया गया—“सत्यं

शिवं सन्दाम'और नीचे भस्वान् प्रकरकी सही थी।

## महात्माओंका प्रभाव

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

जो प्रेमी भक्त भक्तिके द्वारा भगवान्को प्राप्त हो जाता है, उस भक्तमें भी भगवान्के वे गुण आ जाते हैं, जिनकी व्याख्या गीता(१२।१३—१९)—में की गयी है। ज्ञानके द्वारा जो परमात्माको प्राप्त हो गया है, वह ब्रह्म ही बन गया है, उसके लक्षण गीता(१४।२२—२५)—में बताये गये हैं।

महात्माके दर्शनमात्रसे भी बहुत लाभ होता है; क्योंकि उससे महात्माका स्वरूप हृदयमें अंकित हो जाता है, जिससे हृदयके पाप नष्ट हो जाते हैं। महात्मा पुरुष दिव्य ज्ञानकी एक विलक्षण ज्योति हैं, वह दिव्य ज्ञानज्योति समस्त पापोंको भस्म कर देती है। महात्मा यदि किसीको स्मरण कर लें या कोई महात्माका स्मरण कर ले तो उसके मनमें उनकी स्मृति हो जानेसे भी पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार महात्माका स्पर्श प्राप्त हो जानेसे भी पाप नाश हो जाते हैं, चाहे महात्मा किसीको स्पर्श करें, चाहे महात्माका कोई स्पर्श कर ले। जैसे एक ओर अग्नि पड़ी हुई है और दूसरी ओर एक घासकी ढेरी है। अग्निकी चिनगारी उड़कर घासपर गिरती है तो घास जलकर अग्नि बन जाती है और घास उड़कर अग्निमें गिरती है तो भी घास अग्नि बन जाती है, अग्नि अग्नि ही रहती है। वैसे ही अग्निकी भाँति महात्माओंमें सदा ज्ञानाग्नि प्रज्वलित रहती है। उस ज्ञानाग्निके द्वारा महात्मा पुरुषोंके तो पाप पहले ही नष्ट हो चुके हैं, किंतु जिसका उनके साथ किसी भी प्रकारका संसर्ग हो जाता है, उसके भी पाप नष्ट होते चले जाते हैं। फिर महात्माओंके साथ वार्तालाप करके जो उनके बताये हुए सिद्धान्तोंके अनुसार साधन करता है, उसका संसार-सागरसे उद्धार हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है। गीता अध्याय १३ के २५वें श्लोकमें कहा है—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।

तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

इसके पूर्व गीतामें यह कहा गया था कि कितने ही तो ध्यानयोगके द्वारा परमात्माका साक्षात्कार करते हैं, कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और कितने ही कर्मयोगके द्वारा, किंतु जो पुरुष न ज्ञानयोग जानते हैं, न ध्यान-योग जानते हैं और न कर्मयोग ही जानते हैं, मूढ़, अज्ञानी हैं, वे भी उन ज्ञानियोंके पास जाकर, उनकी बात

सुनकर, उसके अनुसार साधन करते हैं, तो वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूपी संसार-सागरसे तर जाते हैं।

संसारमें अनासक्त जो वीतराग पुरुष हैं, उनके संगसे भी मनुष्य वीतराग हो जाता है। विरक्त—वीतराग पुरुषोंके स्मरणसे चित्तकी वृत्तियाँ एकाग्र हो जाती हैं, जिससे आगे चलकर उसे आत्माका ज्ञानतक हो जाता है। महर्षि पतंजलिने योगदर्शनके प्रथम पादमें कहा है—

‘वीतरागविषयं वा चित्तम्।’ (योगदर्शन १।३७)

वीतराग पुरुष, जिसके चित्तका विषय है, उसके चित्तकी वृत्तियाँ स्थिर हो जाती हैं। ज्ञानी, महात्मा पुरुष तो वीतराग होकर ही महात्मा बने हैं। तीव्र वैराग्य और दैवी-सम्पदाके लक्षण तो महात्मामें साधनावस्थामें आ जाते हैं। दैवी-सम्पदाकी व्याख्या गीताके १६वें अध्यायके प्रथमसे तीसरेतक तीन श्लोकोंमें की गयी है।

महात्मा पुरुष हमें याद करते हैं तो उनके ध्यानमें हमारा चित्र आ जाता है। इससे भी बहुत लाभ हो जाता है और हम महात्माको याद करें तो भी हमें लाभ हो जाता है, वीतराग पुरुषको याद करनेसे जो लाभ होता है, उससे अधिक महात्माको याद करनेसे होता है, और उससे भी अधिक विशेष लाभ श्रीभगवान्को याद करनेसे होता है। स्मरण करनेयोग्य तो श्रीभगवान् ही हैं। उनकी स्मृतिमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। भगवान्में शरीर-शरीरी-भेद नहीं है। अतः उनका शरीर दिव्य—अलौकिक चिन्मय है। वह भगवान् ही है, परंतु महात्माका शरीर ऐसा नहीं है। महात्माका शरीर तो पांचभौतिक है। इसीलिये भगवान्को दिव्य-चिन्मय माधुर्य-मूर्ति कहते हैं। उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श सभी आनन्दप्रद और कल्याणकर होते हैं, इसलिये भगवान्के समान तो भगवान् ही हैं। परंतु महात्मा पुरुषका स्मरण-संग भी अत्यन्त लाभदायक है। महापुरुषके संगकी महिमा बताते हुए कहा गया है—

एक घड़ी आधी घड़ी आधीमें पुनि आध।

तुलसी संगत साधु की, कटै कोटि अपराध॥

एक घड़ी, आधी घड़ी या आधीमें भी आधी घड़ीका जो महात्मा पुरुषोंका संग है, उसका इतना माहात्म्य है कि उससे करोड़ों अपराध कट जाते हैं। यह समझें कि एक घड़ी २४ मिनटकी होती है, आधी १२ मिनटकी और



जिनके संगसे, जिनके साथ वार्तालाप करनेसे, दर्शनसे, स्पर्शसे आत्माका सुधार हो, अपनेमें भक्तोंके लक्षण प्रकट होने लगें, गुणातीत पुरुषोंके लक्षण आने लगें तो समझना चाहिये कि यह महापुरुष है। जब हम महापुरुषोंका संग करनेके लिये जायँ तो हम यह समझें कि हम एक ज्ञानके पुंजके सम्मुख जा रहे हैं। जैसे सूर्यके सम्मुख जानेसे अन्धकार तो दूर भाग ही जाता है, किंतु अधिक-से-अधिक प्रकाश होता चला जाता है। हम देखते हैं कि जब प्रातःकाल सूर्य उदय होता है तब ज्यों-ज्यों सूर्य नजदीक आता है, त्यों-ही-त्यों सूर्यके प्रकाशका अधिक असर पड़ता है। वैसे ही हम जितने ही महात्माओंके समीप होते हैं, उतना ही हमको अधिक लाभ मिलता है। वे एक ज्ञानके पुंज हैं, उस ज्ञान-पुंजसे हमारे अज्ञानान्धकारका नाश होकर हमारे हृदयमें भी ज्ञान-सूर्यका प्राकट्य होता है। महात्माओंमें अद्भुत प्रभाव होता है। उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालापसे पापोंका नाश होकर और दुर्गुण-दुराचारोंका अभाव होकर सद्गुण-सदाचार आ जाते हैं। अज्ञानका नाश होकर हृदयमें ज्ञान आ जाता है, जिससे हमें सहज ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है। यह उन महापुरुषोंका प्रभाव है, जो महापुरुष परमात्माको प्राप्त हो चुके हैं, ब्रह्ममें मिल चुके हैं, या सायुज्य मुक्तिको प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे महात्मा परमात्मा ही बन जाते हैं। इसीलिये परमात्माके गुण-प्रभाव उनके गुण-प्रभाव हैं, यह समझना ही महात्माको तत्त्वसे समझना है। वास्तवमें महात्माका आत्मा भी परमात्मा ही है, पर हम मानते नहीं, उसे परमात्मासे भिन्न समझते हैं। इसलिये हम महात्माके समान नहीं होते। यह समझना भी अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर ही होता है। भक्ति-मार्गमें भगवान्से भिन्न रहनेपर भी भक्तोंकी स्थिति विलक्षण होती है। जैसे जीवन्मुक्त ज्ञानीके दर्शन, भाषण, स्पर्शसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, वैसे ही भगवद्भक्तके दर्शन, भाषण, स्पर्शसे भी हो जाता है। महापुरुषोंका रहस्य वास्तवमें महापुरुष बननेपर ही समझमें आता है। उनका उद्देश्य सर्वथा अलौकिक और अद्भुत होता है। उनका अपना तो कोई काम रहता ही नहीं। संसारमें उनका जो जीवन है या शरीरकी स्थिति है, वह संसारके हितके लिये ही है। जैसे भगवान्का अवतार संसारके उद्धारके लिये ही होता है, वैसे ही महात्मा पुरुषोंका जीवन भी संसारके उद्धारके लिये ही है।

# ममताके रोगकी चिकित्सा

[ कैकेयी-भरत-प्रसंग ]

( मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय )

मनके रोगोंका जो स्वरूप है, उसे रामचरित-मानसमें आयुर्वेदकी पद्धतिके अनुसार शरीरके रोगोंसे तुलना करते हुए प्रस्तुत किया गया है। काम, क्रोध, लोभ आदि मुख्य रोगोंके वर्णनके बाद काकभुशुण्डिजी जिस रोगका वर्णन करने जा रहे हैं, वह बड़ा विचित्र रोग है। यह रोग बहुधा हमें रोग ही प्रतीत नहीं होता, पर है बड़ा भयावह, जिसे कहते हैं 'ममता'। ममताका वर्णन करते हुए, उसकी तुलना शरीरके रोगोंमें 'दाद' से की गयी। ममता मनका दाद है। दाद ऐसा विचित्र रोग है कि जिसके होनेपर कोई यह नहीं समझता कि वह रोगी है। कभी उसको लगता ही नहीं कि यह भी कोई कष्ट देनेवाला रोग है। जैसे अन्य रोगोंमें स्वस्थ होनेकी चेष्टा दिखायी देती है, वैसी इसमें दिखायी नहीं देती। गोस्वामीजीने ममताकी तुलना जो दादसे की है, इसका कारण बड़ा मनोवैज्ञानिक है। काम, क्रोध, लोभकी विकृति होनेपर व्यक्ति जब अस्वस्थ होता है, तो उसे इसका स्पष्ट बोध रहता है, परंतु बड़ी विचित्र बात है कि अपनी इस ममताकी ओर व्यक्तिका ध्यान बहुधा जाता ही नहीं। यह सोच भी नहीं पाता कि मेरे मनमें ममता नामका कोई रोग है। ममताकी इस विचित्रतापर गोस्वामीजी एक बड़ा ही सुन्दर व्यंग्यात्मक संकेत देते हैं कि अन्य रोग तो केवल दुःख ही दुःख देते हैं, पर यही एक ऐसा रोग है, जिसमें दुःख एवं सुख दोनोंकी अनुभूति होती है। दादमें खुजलाहट होती है। उसे खुजलाकर आदमी बड़े सुखका अनुभव करता है और बादमें जलन होनेपर कष्टका अनुभव भी करता है। ये दोनों बातें ममताके साथ भी जुड़ी हुई हैं। एक तो यह रोग होते हुए भी रोग प्रतीत नहीं होता और सुख एवं दुःख दोनोंकी सृष्टि करता है।

वास्तवमें हम देखते हैं कि कभी-कभी मनुष्य इस ममताको लेकर स्वयंको अत्यन्त सुखी अनुभव करता

है। ममताका अर्थ है—ममत्व, मेरापन, यह वस्तु मेरी है, इस व्यक्तिसे मेरा सम्बन्ध है, यह मेरा है, इत्यादि। इस मेरेपनके कारण व्यक्तिके हृदयमें जिस लगावका अनुभव होता है, उसीका नाम ममता है। जिनसे हमें ममता होती है, उन्हें जब हम उन्नति करते देखते हैं, तो हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। यही एक प्रकारकी अनुभूति हो ऐसा नहीं है। यह भी होता है कि जिनसे हमारी ममता हो, यदि वे हमारी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य करते हैं या हमारी भावनाओंका ध्यान नहीं रखते तो हमारे हृदयमें बड़ी पीड़ा होती है। ममताकी इस वृत्तिको रामचरितमानसके विभिन्न प्रसंगोंमें विविध रूपोंमें प्रस्तुत किया गया है।

गोस्वामीजीने ममताको बड़े भयावह रूपमें देखा। यह मानसिक दुर्बलताओंके साथ जुड़कर कितना भयंकर परिणाम उत्पन्न करती है, इसकी चर्चा करते हुए वे कहते हैं—

'ममता केहि कर जस न नसावा।' (७।७१।२)

—संसारमें ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसके जीवनमें ममता आकर उसके यशको नष्ट न कर देती हो, उसपर कलंक न लगा देती हो। यह ममता व्यक्तिके जीवनको कलंकित कर देती है। इस संदर्भमें मानसमें कैकेयी एक ऐसी पात्रा हैं, जो बड़ी यशस्वी थीं, परंतु ममताके कारण उनका यश नष्ट हो गया।

रामराज्य बन गया, लेकिन गोस्वामीजी गीतावलीमें एक बड़ी अद्भुत बात लिखते हैं कि कैकेयी जबतक जीवित रहीं तबतक भरतजीने कभी उन्हें माँ कहकर नहीं पुकारा। पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है। कैकेयीजीने श्रीरामको पा लिया। उन्होंने रामराज्यमें सहयोग दिया। भगवान् रामने कैकेयीजीकी प्रशंसा की है। श्रीलक्ष्मण तो कैकेयीजीके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम करते हैं, पर भरत-जैसे उदार सहृदय व्यक्ति जीवन-भर अपनी माँको 'माँ' कहकर न पुकारें, यह सुनकर तो बड़ा विचित्र लगता है। लेकिन

श्रीभरतकी भूमिका यहाँपर एक वैद्यकी भूमिका है। वे सजग हैं, जानते हैं कि कैकेयीका रोग क्या है और उसे पथ्य क्या देना है? ममता ही कैकेयीका रोग है। ममता दादके समान है। दादका गीलेपनसे बड़ा सम्बन्ध है। व्यक्ति अगर दादवाले अंगको बार-बार गीला करेगा, उसे ठीकसे सुखायेगा नहीं तो वहाँ फिरसे दाद हो जानेकी सम्भावना बनी रहेगी। अभिप्राय यह है कि व्यवहारमें शुष्कता मिले तो ममताका गीलापन कम होगा और आर्द्रता मिले तो गीलापन बढ़ेगा। यही ममताकी प्रकृति है।

कैकेयीजी बड़ी यशश्विनी थीं। सर्वश्रेष्ठ सुन्दरीके रूपमें उनकी सुन्दरताकी कीर्ति फैली हुई थी। वे जितनी सुन्दर थीं, उतनी ही ओजस्विनी और तेजोमयी थी। महाराज दशरथ जब युद्धमें जाते थे तब अन्य रानियाँ उनके साथ नहीं जाती थीं, पर कैकेयीजी रणक्षेत्रमें भी उनका साथ देनेके लिये जाती थीं। पतिके प्रति उनके मनमें प्रगाढ़ अपनत्व दिखायी देता है। उनकी उदारता भी इतनी प्रसिद्ध थी कि सभी लोग यह कहा करते कि सौतिया डाह सभीमें पाया जाता है, किंतु कैकेयीजी इसकी अपवाद हैं।

इस तरह कैकेयीजी स्वभाव, शील, शौर्य और सौन्दर्यसे तो यशस्विनी थीं, पर यह अनर्थ क्यों हुआ? ममताके कारण। अगर उनके अन्तःकरणसे यह चीज मिट गयी होती, तो इतना बड़ा अनर्थ न हुआ होता। वे ममताके संस्कारको नहीं मिटा पायीं, इस बातको भूल नहीं पायीं कि भरत मेरा बेटा है। श्रीराम उन्हें ‘माँ’ कहकर पुकारते हैं। वे अपनी माँसे भी अधिक सम्मान कैकेयीको देते हैं, पर इतना होते हुए भी कैकेयी सोचती हैं कि अभी तो राम मेरे नकली बेटे हैं, अगले जन्ममें हों तों हों। और अगले जन्ममें भी कब होंगे, जब मेरे गर्भसे जन्म लेंगे तभी वे मेरे असली बेटे होंगे। यही कैकेयीजी असलीकी परिभाषा मानती थीं। उन्होंने मन्थरासे यही कहा कि मैं ब्रह्मासे प्रार्थना करती हूँ कि यदि मेरा अगला जन्म हो तो राम मेरे पुत्र हों। पर क्या कैकेयीजीका अगला जन्म हुआ? न उनका अगला जन्म हुआ और न राम उनके पुत्र बने।

इसका तात्पर्य क्या हुआ? कैकेयीजीको इतनी पूजा एवं

प्रार्थनाका क्या हुआ? वह सब कहाँ गया? उनका फल क्यों नहीं मिला? यहींपर कैकेयीजी और भगवान् श्रीराममें मतभेद है। कैकेयीजी कहती हैं कि मेरा अगला जन्म हो और राम मेरे पुत्र बनें। किंतु भगवान् राम कहते हैं कि माँ, यदि तुम्हारा अगला जन्म हो गया, तब तो मेरा ईश्वरत्व किसी काम नहीं आया। मेरे ईश्वरत्वसे सबको संसारसे मुक्ति मिल जाय और तुम्हें न मिले तो यह तो मेरे लिये कलंककी बात होगी और तुम यह जो कहती हो कि अगले जन्ममें राम मेरा बेटा बने, तुम्हारा इतना स्नेह और मैं तुम्हें इतने दिनोंतक प्रतीक्षा कराऊँ? अगले जन्ममें तुम्हारा बेटा बनूँ तो तुम्हारी पूजाकी क्या सार्थकता रह जायेगी? मुक्ति न मिले तो मेरी सार्थकता नहीं और तत्काल फल न मिले तो तुम्हारी पूजाकी सार्थकता नहीं। भगवान् राम यह चाहते हैं कि कैकेयीजी यह समझ लें कि मैं उनका ही पुत्र हूँ, पर कैकेयीजी यह नहीं समझ पा रही हैं। शरीरको केन्द्र मानकर विचार करनेके कारण उन्होंने यह मान लिया है कि राम मेरा बेटा नहीं है। वह जो मुझे माँ कहकर पुकारता है, वह तो एक भावका नाता है। उसका जन्म मेरे गर्भसे नहीं हुआ है। मेरे गर्भसे भरतका जन्म हुआ है, इसलिये भरत ही मेरा वास्तविक पुत्र है, राम नहीं।

भगवान् रामने कैकेयीजीको उसी जन्ममें माँ कहकर पुकारा और अन्ततः कैकेयीजीको स्वीकार करना ही पड़ा कि हाँ, अब मेरा भ्रम दूर हो गया। जिस समय कैकेयीजीने भगवान् रामको बुलाकर कहा कि राम, मैंने तुम्हारे पितासे दो वरदान माँगे हैं, क्या तुम उन वरदानोंको पूरा कर सकोगे? भगवान् रामने पूछा—‘माँ, तुमने क्या वरदान माँगा है?’ तो उन्होंने कहा—‘एक तो यह कि मेरा पुत्र राजा हो और दूसरा यह कि तुम चौदह वर्षके लिये वन जाओ।’ भगवान् श्रीराघवेन्द्रने कैकेयीजीके चरणोंको पकड़ लिया और गद्गद कण्ठसे बोले—‘**सुनु जननी**.....’ कैकेयीजीको उन्होंने जननी कहा। भगवान् श्रीरामका अभिप्राय क्या था? माने वे कहना चाहते हैं कि माँ, अगले जन्ममें क्यों, लो मैं तो अभीसे तुम्हारा पुत्र बन गया। मेरी जननी तुम्हीं हो। कैकेयीजी यह कह सकता है कि नहीं-नहीं, मेरा पुत्र तो भरत है।

श्रीभरत यह समझ गये कि कैकेयीके अन्तःकरणमें ममताका संस्कार नहीं मिट पा रहा है और जबतक उनका यह ममत्व दूर नहीं होगा, तबतक उनका कल्याण नहीं हो सकता। इसलिये उन्होंने यह निर्णय लिया कि इनके ममत्वको दूर करना ही होगा और उनके इस ममतारूपी दादकी चिकित्सा उन्होंने अपने शुष्क व्यवहारसे ही प्रारम्भ की। कैकेयीजीके प्रति उनके शुष्क व्यवहारका अभिप्राय यही था कि व्यवहारमें आर्द्रता कैकेयीजीके लिये कुपथ्य है। उनमें अहंताकी समस्या नहीं है। वे सिंहासन अपने लिये



[ प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता ]

## श्रीकृष्ण-लीलाके अन्ध-अनुकरणसे हानि

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

भगवान् श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं और भगवान् श्रीकृष्ण लीलापुरुषोत्तम। दोनों एक हैं। एक ही सच्चिदानन्दधन परमात्मा भिन्न-भिन्न लीलाओंके लिये दो युगोंमें दो रूपोंमें अवतीर्ण हैं। इनमें बड़े-छोटेकी कल्पन करना अपराध है। श्रीरामरूपमें आपकी प्रत्येक लीला सबके अनुकरण करनेयोग्य मर्यादारूपमें होती है, रामजीकी लीलाओंका रहस्य अत्यन्त निगूढ़ होनेपर भी बाह्यरूपसे सबकी समझमें आ सकता है और बिना किसी बाधाके अपने-अपने अधिकारानुसार सभी उसका अनुकरण कर सकते हैं, वह सीधा राजमार्ग है, परंतु भगवान्की श्रीकृष्णरूपमें की गयी लीलाएँ बाहर-भीतर दोनों ही प्रकारसे निगूढ़ और रहस्यमय हैं। इनका समझना अत्यन्त ही कठिन है और बिना समझे अनुकरण करना तो हलाहल विष पीना अथवा जान-बूझकर धधकती हुई आगमें कूद पड़ना है। यह बड़ा ही कण्टकाकीर्ण और ज्वालामय मार्ग है। अतएव सर्वसाधारणके लिये सर्वथा समझने, मानने और पालन करनेयोग्य महान् उपदेश भगवान् श्रीकृष्णकी भगवद्गीता है और सर्वतोभावसे अनुकरण करनेयोग्य भगवान् श्रीरामकी मर्यादायुक्त लीलाएँ हैं।

जिन लोगोंने बिना समझे-बूझे भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका अनुकरण किया, वे स्वयं डूबे और दूसरे अनेक निर्दोष नर-नारियोंको डुबोनेका कारण बने। अग्नि पी जाने, पहाड़ अंगुलिपर उठा लेने, कालिय नागको नाथने आदि क्रियाओंका अनुकरण तो कोई क्यों करने लगा और करना भी शक्तिके बाहरकी बात है, अनुकरण करनेवाले तो बस, चौर-हरण, रासलीला और श्रीराधाकृष्णकी प्रेमलीलाओंका अनुकरण करते हैं। इन लीलाओंके महान् उच्च आध्यात्मिक भावको समझनेमें सर्वथा असमर्थ होकर अपनी वासनामयी वृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये इनके अनुकरणके नामपर वास्तवमें पाप किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि भगवत्प्रेममें वैराग्यकी कोई आवश्यकता नहीं, त्यागकी जरूरत नहीं। श्रीप्रियाप्रियतमजीके प्रेममें तो केवल शृंगार और भोगका ही प्रयोजन है, बल्कि यहाँतक भी कह दिया

जाता है कि युगल-सरकारके चरणोंके सेवक बन जाओ, फिर चोरी-जारी, झूठ-कपट, प्रमाद-आलस्य जो कुछ भी करते रहो, कोई आपत्ति नहीं है। मेरी समझसे ये सारी बातें अपनी कमजोरियोंको छिपाने, भगवद्भक्तिके नामपर विषयोंको प्राप्त करने, कपट-प्रेमी बनकर पाप कमाने और भोले नर-नारियोंको ठगकर अपनी बुरी वासनाओंको तृप्त करनेके लिये कही जाती हैं। सच्चिदानन्दधन भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी आत्मस्वरूपिणी जगज्जननी श्रीराधिकाजीका चरण-सेवक बनकर भी क्या कोई कभी चोरी-जारी आदि पापकर्म कर सकता है ? भगवान्के सच्चे मनसे लिये हुए एक नामसे ही जब सारे पापोंका समूह भस्म हो जाता है तो भगवान्के चरणसेवकोंमें तो पाप-प्रवृत्ति रह ही कैसे सकती है ? वैराग्य और त्याग तो भगवद्भक्तिकी आधार-शिला है। जो अपने मनसे विषयोंका त्याग नहीं करता, भोगोंकी स्पृहा नहीं छोड़ता, वह भगवान्का भक्त ही कैसे बन सकता है ? भक्तको तो अपना सर्वस्व लोक-परलोक और मोक्षतक भगवान्के चरणोंपर निछावरकर सर्वथा अकिञ्चन बन जाना पड़ता है। भगवत्प्रेमी भोगी कैसे हो सकता है ? अतएव जो भगवत्प्रेमके नामपर भोगका उपदेश करते हैं, उनसे और उनके उपदेशोंसे सदा सावधान रहना चाहिये। दुःखकी बात है कि श्रीमद्भागवतकी रासपंचाध्यायीका भ्रान्त-अनुकरण करने जाकर कामवासनासे स्त्रियोंसे मिलने-जुलनेमें तो कोई आपत्ति नहीं मानी जाती, यहाँ तो भगवान्के लीला-अनुकरणका नाम लिया जाता है, परन्तु उस श्रीमद्भागवतके 'स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्' 'आत्मवान्को चाहिये कि वह स्त्रियोंके ही नहीं, स्त्रीसंगियोंके संगको भी दूरसे त्याग दें।' इस उपदेशपर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्णप्रेमके एवं माधुर्यरसके मर्मको समझनेवाले तो श्रीचैतन्य महाप्रभु थे, जो मधुर रसके उपासक होकर भी धन और स्त्रीसे सर्वथा दूर रहते थे।

यद्यपि कई कारणोंसे आजकल प्रकटमें प्रायः ऐसी पाप-क्रियाएँ कम होती हैं, परंतु गुप्तरूपसे इन भावोंका

काम, क्रोध और लोभ—ये तीन नरकके दरवाजे और आत्माको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं, इसलिये इन तीनोंका सर्वथा त्याग कर दो।

पाप है। पुनः साधन करनेमें विघ्न या प्रतिबन्ध डाले, यही पापका स्वरूप है। इससे विपरीत पूर्व कहा हुआ पुण्यका स्वरूप है, जो मनुष्यकी बुद्धिको मनुष्यताके स्तरसे नीचे नहीं गिरने देता और मोक्षतक ले जाता है। मनुष्यकी बुद्धिका स्तर तब गिरता है, जबकि मनुष्यके अन्दर उनके काम, क्रोध इत्यादि विकार और उत्तेजनाद्वारा हित-अहितके बारेमें विचार करनेकी और समझनेकी बुद्धि खो जाय। जैसे कि पशु-पक्षी, कीट-पतंगमें यह मनुष्यताके स्तरकी बुद्धि नहीं है, इसलिये वह दुर्गति है। मनुष्य होते हुए भी यदि अन्ततक दुःखमें पड़ा रहे, तो यह दुर्गति ही है। यह सब पापका कार्य है। इसलिये वह सब प्रकारके मिथ्या कर्मोंको करनेमें प्रेरित वह कर्म करने लग जाय; जो कि दूसरोंकी दृष्टिमें भी न करनेयोग्य माने जाते हैं। ऐसे कर्मोंसे मनुष्यको मोक्षका मार्ग और अपनी आत्माका सुख मिलना तो दूर रहा; परन्तु संसारमें कोई अच्छा या मनुष्यके स्तरका जन्मतक भी नहीं मिलेगा। कोई नहीं कह सकता कि वह मरनेके पश्चात् किन-किन योनियोंमें जन्म पाता हुआ भयंकर दुःखोंको प्राप्त होता रहेगा। केवल मनुष्यकी बुद्धि रखकर यदि उन सब पापोंसे बचता रहेगा; तभी कहीं मनुष्य-जन्म पाकर अन्तमें पवित्रता-निर्मलता रखता हुआ मोक्षमार्गमें प्रवृत्त हो जायगा अर्थात् मोक्षमार्गपर चढ़ जायगा और अन्तमें

परमात्मतत्त्वको जाने बिना अन्य काम करना आत्मघात है। आत्मघाती महापापी होता है। उपनिषदोंमें



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

कहा गया है—

‘ये के चात्महनो जनाः’ (ईशोपनिषद् ३)

‘आत्महत्यारे अधोगतिको प्राप्त होते हैं।’

इस तत्त्वको सबसे पहले जानना चाहिये; क्योंकि मानव-जीवनका सबसे प्रथम लक्ष्य यही है।

मनुष्य-शरीरके प्राप्त करनेका उद्देश्य संग्रह और भोग है ही नहीं—

‘एहि तन कर फल बिषय न भाई।’

इस तत्त्वको जाने बिना यदि मानव-शरीर चला गया तो महान् हानि है। उस हानिकी पूर्ति किसी रीतिसे कभी होनेवाली नहीं है और परमात्माको छोड़कर किसी-न-किसीका आश्रय लेते ही रहना पड़ेगा, अर्थात् सदा ही परतन्त्रता भोगनी पड़ेगी। इसलिये समझदार व्यक्तिको चाहिये कि आज ही उस तत्त्वको समझनेके लिये तैयार हो जाय। उत्कट जिज्ञासा होनेपर इसे आज ही प्राप्त किया जा सकता है। भगवान्की घोषणा है—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥

(गीता ४।३६)

‘यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे भलीभाँति तर जायगा।’

संसारमें जितने भी पापी हैं, वे तीन भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। एक तो **पापकृत्** (पापी), दूसरे **पापकृत्तर** (पापियोंमें बड़े पापी) और तीसरे **पापकृत्तमः** (सम्पूर्ण पापियोंमें भी सबसे बड़े पापी)। महान्-से-महान् पापी भी क्यों न हो, ज्ञानरूपी नौकामें बैठकर शीघ्र ही पाप-समुद्रसे तर जाते हैं।

## अपना कौन है ?

सामग्री, सामर्थ्य, समय और समझ—ये चारों हमें मिले हैं, केवल सदुपयोग करनेके लिये। इन्हें अपनी या अपने लिये मानना इनका दुरुपयोग करना है।

वर्णाश्रम, योग्यता एवं शास्त्राज्ञाके अनुसार हम जो

कुछ भी आचरण करते हैं, उसमें परिवर्तनकी नहीं केवल परिमार्जनकी आवश्यकता है। जिन्हें हम अपना या अपने लिये मानते हैं, उनको थोड़ा भी परिवर्तित कर देना हमारे हाथकी बात नहीं। इन पदार्थोंको हम साथ लाये नहीं, साथ ले जा सकते नहीं, मनके अनुकूल बना सकते नहीं और जैसे हैं—वैसे भी रख सकते नहीं। यदि हमारा अधिकार चलता तो हम पदार्थोंको नष्ट होनेसे बचा लेते, शरीरको वृद्ध-रोगी न होने देते और मरने भी नहीं देते। अतः जिनपर हमारा अधिकार न चले, उन प्राकृत पदार्थोंको अपना मानना सरासर मूर्खता है।

अपने और अपने लिये तो केवल परमात्मा है ।  
गोस्वामीजी कहते हैं—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

(रा०च०मा० ७। ११७। २)

यह जीव ईश्वरका अंश है। अतएव अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभावसे ही सुखकी राशि है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् भी यही कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

(१५।७)

अर्थात् इस देहमें वह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है। (और वही) प्रकृतिमें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंका आकर्षण करता है। उत्तम मान्यता तो यह है कि परमात्मा भी मेरे लिये नहीं, किंतु मैं परमात्माके लिये हूँ। मुझे संसार, प्रकृति और परमात्मा किसीसे कुछ भी नहीं चाहिये। जो किसीसे कुछ नहीं चाहता, उसे परमात्मा अपना 'मकटमणि' बना लेते हैं।

परमात्माका अंश यह जीव होकर तुच्छ प्राकृत पदार्थोंकी इच्छा करके अपना पतन करता है; जनमता, मरता और दुःख पाता है। यदि हिम्मत करके यह अपने मालिक परमात्माको पहचान ले (संसार बदलनेवाला है, और परमात्मा रहनेवाले हैं) तो निहाल—कृतकृत्य हो जाय। यह विद्या उत्कट जिज्ञासामात्रसे प्राप्त होती है।

## मानसिक शक्तिसे रोगोंका उपचार

( श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए० )

जबसे मानवने बोलना और सोचना सीखा, तबसे उसने अपनी आधिभौतिक और आधिदैविक आपत्तियोंके निवारणके उपाय भी सोचे। मनुष्यको जब किसी प्रकारका रोग हो जाता है तो वह स्वभावतः उसका निराकरण अपने आस-पासमें मिलनेवाली वस्तुओंके द्वारा करनेकी चेष्टा करता है। इस प्रकार अनेक प्रकारकी ओषधियोंका आविष्कार हुआ। मनुष्यके कुछ रोग ऐसे भी होते हैं, जिनकी उसे कोई भी ओषधि दिखायी नहीं देती, तब वह ऐसी किसी सत्ताकी दयाका आह्वान करता है जो उसे उस दुःखसे बचाये। ये सत्ताएँ भूत-प्रेत, देवी-देवता अथवा ईश्वरके रूपमें मान ली जाती हैं। समाजके कुछ लोग अपने जीवनको इनकी समीपता प्राप्त करनेमें लगा देते हैं। ये समाजके पंडा अथवा पुरोहित कहलाते हैं। ये लोग समाजके बाकी लोगोंके द्वारा अधिक सम्मानित रहते हैं और उनके विश्वासपात्र बन जाते हैं। अपनी निःस्वार्थता और समाज-सेवामें तत्परताके कारण उन्हें ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है कि जो उनके शब्दको विशेष शक्ति दे देती है। ऐसे ही लोगोंके वाक्य मन्त्र-तन्त्र बन जाते हैं।

किसी भी मन्त्रमें शक्ति लानेके लिये मन्त्रज्ञाताको साधनाकी आवश्यकता होती है। यह साधना उस मन्त्रके द्वारा मनको बलवान् बनानेकी साधना है। मन्त्र इच्छाशक्तिको बलवान् बनानेका साधन है। जिस मनुष्यकी इच्छाशक्ति बलवान् है, वह विपत्तिमें पड़े हुए व्यक्तिको, शारीरिक रोगसे पीड़ित व्यक्तिको अथवा किसी मानसिक व्याधिमें उलझे हुए व्यक्तिको अधिक सहायता कर सकता है। इच्छाशक्तिका बल रखनेवाला व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके मनपर ऐसा प्रभाव डालता है कि उसीके अनुसार दूसरा व्यक्ति सोचने लगे। जैसा मनुष्यका मन होता है, वैसा ही उसका शरीर बन जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवनसे निराश हो गया हो तो उसे घातक रोग शीघ्र ही पकड़ लेते हैं और यदि मरते हुए व्यक्तिको भी जीनेके लिये आशान्वित कर दिया जाय तो वह जी जाता है।

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक तथ्य तन्त्रोपचारका आधार

है। तन्त्रोपचार उतना ही पुराना है, जितना मानव-जातिका इतिहास। भारतवर्षमें यह वैदिक-कालसे आज दिनतक चला आ रहा है। यूरोपमें प्राचीन यूनानी इसमें विश्वास करते थे और बीसवीं शताब्दीमें नेन्से नगरमें इमील कुए नामक साधक तन्त्रोपचारके द्वारा ही हजारों मानसिक और शारीरिक रोगोंकी चिकित्सा करते थे।

तन्त्रोपचारको आधुनिक मनोविज्ञानकी भाषामें 'निर्देशन चिकित्सा-विधि' (Suggestion Therapy) कहते हैं। निर्देशन मनुष्यके अचेतन मनको प्रभावित करता है। मनुष्यका यही मन है जो उसकी आन्तरिक, मानसिक और शारीरिक क्रियाओंको संयोजित करता है। किसी व्यक्तिको समझाने-बुझानेसे हम केवल उसके चेतन मनको ही प्रभावित करते हैं। इस मनमें शरीरकी भीतरी क्रियाओंको चलानेकी शक्ति नहीं है और यह मनुष्यके शारीरिक और मानसिक रोगोंका निवारण नहीं करता। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि यह मन मन्त्रकी शक्तिमें विश्वास भी न करे। मनुष्यका चेतन मन तार्किक होता है। तर्क किसी भी रचनात्मक कल्पनाको ठहरने भी नहीं देता। अतएव तर्कयुक्त बातसे कोई भी स्वास्थ्यवर्धक अथवा रोगनिवारक कार्य नहीं होते।

किसी भी व्यक्तिको किसी रोगसे मुक्त करनेके लिये आवश्यक है कि उसके मनमें यह बात जमा दी जाय कि वह उस रोगसे मुक्त हो जायगा। किसी प्रकारकी प्रगतिके लिये मनुष्यके मनके विचारोंकी दशा रचनात्मक बना देना आवश्यक है। विश्वास मनुष्यके मनकी चंचलताको रोककर उसे आशावादी दिशामें मोड़ देता है और इससे मनुष्य न केवल रोगमुक्त हो जाता है, वरं प्रगतिशील भी बन जाता है।

विश्वास विचारके परे वस्तु है। जब विचार शान्त हो जाता है तभी विश्वास उत्पन्न होता है। विचार विचारको शान्त नहीं कर सकता। इसके लिये व्यक्तिके अचेतन मनको प्रभावित करना आवश्यक है। मनुष्यका अचेतन मन प्रेमके द्वारा अथवा तन्त्रके द्वारा प्रभावित होता है और जब अचेतन मन प्रभावित हो जाता है तब वह अपनी अपार शक्ति मनुष्यके व्यक्तित्वको दे देता है।

जर्मनी प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्पेंगर महोदय और इंग्लैंडके डॉ० विलियम ब्राउन डॉ० फ्रायडके उक्त कथनको एकांगी बताते हैं। डॉ० फ्रायड जडवादी थे। अतएव वे मनकी किसी ऐसी शक्तिमें विश्वास नहीं करते थे जो सामान्य तार्किक विचारसे सिद्ध न हो सके, परंतु किसी तथ्यकी सत्यताका निर्णय वास्तविक प्रदत्तोंके आधार पर ही किया जा सकता है। डॉ० विलियम ब्राउन पिछली लड़ाईमें सिपाहियोंकी मानसिक चिकित्सा करते थे। उन्होंने हजारों रोगियोंकी सफल चिकित्सा की। इसमें वे निर्देशन और मनोविश्लेषण दोनों विधियोंसे काम लेते थे। उन्होंने किशोर बालकोंकी उनकी जाटिल आदतोंसे

कर्मफलभोगमें परतन्त्रता

मुक्त करनेमें इस विधिका विशेषरूपसे प्रयोग किया। तन्त्रोपचार-विधिमें दो बातें आवश्यक हैं। पहली चिकित्सकका अपनी साधनामें विश्वास और दूसरी रोगीकी चिकित्सकपर श्रद्धा। अपनी मन्त्रशक्तिमें विश्वास बढ़ानेके लिये चिकित्सकको कुछ साधनाएँ करनी पड़ती हैं। ये साधनाएँ विभिन्न देश तथा समाजकी संस्कृतिके अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं। कभी-कभी साधक किसी बाहरी सत्ताको स्वीकार करता और उसको आधार बनाकर इच्छा-शक्तिको मन्त्रद्वारा मजबूत बनानेकी चेष्टा करता है और कभी-कभी वह सीधे ही मनको रोकनेका अभ्यास करता है। यह निश्चित है कि बिना तप और त्यागके मनोबल नहीं बढ़ता। अनेक दिनोंके अभ्याससे मन्त्रमें वह शक्ति आती है, जिससे साधक दूसरे व्यक्तिके मनको विशेषरूपसे प्रभावित कर सकता है।

जहाँतक रोगीकी श्रद्धाकी बात है, यह चिकित्सकके व्यक्तित्वपर निर्भर करती है। श्रद्धाका पात्र वही व्यक्ति हो सकता है, जो परोपकारी, तपस्वी और त्यागी है। श्रद्धा मनुष्यके अचेतन मनको प्रभावित करती है और उसके कारण मनुष्य अपने अनजाने ही अपने निराशावादी विचारोंसे मुक्त हो जाता है। फिर उसके अचेतन और चेतन दोनों ही मन रचनात्मक कार्यमें लग जाते हैं। डॉ० विलियम ब्राऊनका कथन है कि किसी भी दैविक

आत्माके सम्पर्कमें आते ही रोगीका मन उसी प्रकार बदल जाता है, जिस प्रकार एक चुम्बकके समीप आते ही एक साधारण लोहेके टुकड़ेमें भीतरी परिवर्तन हो जाता है। महान् पुरुषकी समीपतासे सामान्य व्यक्तिकी शक्तियाँ उसी प्रकार एकमुखी हो जाती हैं, जिस प्रकार चुम्बककी समीपतासे लोहेके टुकड़ेके अणु एकमुखी हो जाते हैं।

इस प्रकार डॉ० विलियम ब्राऊनने विश्वासके द्वारा चिकित्सा अथवा तान्त्रिक चिकित्साकी वैज्ञानिकता सिद्ध की है। मनुष्यके अचेतन मनकी भाषा हमारी सामान्य भाषासे भिन्न होती है। जो बातें चेतन मनको निरर्थक दिखायी देती हैं, वे अचेतन मनके लिये सार्थक होती हैं। इस प्रकार रोगीको रोगसे मुक्त करनेके लिये उसको लिटा करके अर्धसुप्त अवस्थामें पहुँचाकर पास देना सार्थक होता है। इसी तरह भूतसे पीड़ित व्यक्तिका झाड़ना-फूँकना अथवा उसपर गंगाजल छिड़कना उपयोगी होता है। कभी-कभी ताबीज बाँधनेसे भी ये लाभ होते हैं। किसी तीर्थयात्रामें जाना, यज्ञ-होम करना, अचेतन मनके लिये विशेष अर्थ रखते हैं। ये सभी क्रियाएँ रोगीके अचेतन मनको प्रभावित करने और उसका आत्मविश्वास बढ़ानेके उपाय हैं। प्रत्येक धार्मिक व्यवहारमें इन्हें स्थान है और इनके द्वारा न केवल रोगियोंका लाभ होता वरं सामान्य लोगोंका भी लाभ होता है।

## कर्मफलभोगमें परतन्त्रता

कर्मबन्धनमें जकड़ा हुआ यह अखिल जगत् परिवर्तनशील तो है ही, जीवको नीच योनियोंमें भी जाना पड़ता है। यदि जीव कर्मपरतन्त्र न होकर स्वतन्त्र होता तो यह परिस्थिति सामने क्यों आती। भला, स्वर्गमें रहने और अनेक प्रकारके सुख भोगनेकी सुविधाको छोड़कर विष्ठा एवं मूत्रके भण्डारमें भयभीत होकर रहना कौन चाहता है? त्रिलोकीमें गर्भवाससे बढ़कर दूसरा कोई नरक नहीं है। गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्यामें तत्पर हो जाते हैं। गर्भमें कीड़े काटते हैं। नीचेसे जठराग्नि ताप पहुँचाती है। निर्दयतापूर्वक बँधे रहना पड़ता है। गर्भसे बाहर निकलते समय भी वैसे ही कठिन परिस्थिति सामने आती है; क्योंकि निकलनेका मार्ग जो योनियन्त्र है, वह स्वयं दारुण है। फिर बचपनमें नाना प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। विवेकी पुत्र किस सुखको देखकर स्वयं जन्म लेनेकी इच्छा कर सकते हैं; परंतु देवता, मनुष्य एवं पशु आदिका शरीर धारण करके किये हुए अच्छे-बुरे कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। तप, यज्ञ और दानके प्रभावसे मनुष्य इन्द्र बन सकता है और पुण्य समाप्त हो जानेपर इन्द्र भी धरातलपर आते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। (महर्षि व्यास)



# भक्ति और उसकी प्राप्ति के साधन

( श्रीमती विश्वमोहिनीजी, एम० ए० )

सामान्यतः भक्ति अपनेसे किसी भी बड़े पुरुष या देवताके प्रति आदर-श्रद्धाके भावका नाम है, किंतु अधिकतर इस शब्दका प्रयोग केवल ईश्वरके प्रति श्रद्धा अथवा उपासनाके अर्थमें किया जाता है। इसलिये मनसे श्रीप्रभुका दर्शन, भावनासे सेवन, नेत्रोंसे श्रीभगवत्-प्रेमी संतोंका और प्रभु-प्रतिमा, चित्रादिकोंका दर्शन, मुखसे श्रीभगवान्की स्तुति, सुयशयुक्त उनके चरित्रोंका कीर्तन, गुण-गान आदि भक्तिके अंगके रूपमें गृहीत होते हैं।

श्रीमधुसूदनसरस्वतीके मतानुसार भागवत-धर्म-सेवनसे द्रवीभूत चित्तकी सर्वेश्वरके प्रति जो अविच्छिन्न वृत्ति है, वही भक्ति है—

दुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।

सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥

( भक्तिरसायन १।१।३ )

उत्तम भक्तिका स्वरूप स्पष्ट करते हुए श्रीरूप गोस्वामीजी कहते हैं—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृता।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

( भक्तिरसामृतसिन्धु १।१।११ )

‘जिस भक्तिमें आराध्यके अतिरिक्त किसी अन्यकी अभिलाषा न हो; जो ज्ञान तथा कर्मसे आवृत न हो और जिनमें कृष्णकी अनुकूलता प्राप्त करते हुए उनका चिन्तन-मनन किया जाय, वही भक्ति उत्तम है।’ महर्षि शाण्डिल्यने इस सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करते हुए कहा है—

‘सा परानुरक्तिरीश्वरे’ ( शांडिल्यभक्तिसूत्र १।२ )

नारदजीके मतसे अपने समस्त कर्मोंको भगवान्को समर्पित करना और उनका थोड़ा-सा भी विस्मरण होनेपर परम व्याकुल होना ही भक्ति है। यह अमृतस्वरूप है—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च।

( नारदभक्तिसूत्र २।३ )

गोस्वामी तुलसीदासने भक्तिकी विशेषता इस प्रकार बतलायी है—

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

( रा०च०मा० ३।१६।२ )

## भक्तिके भेद

सामान्यतः शास्त्रकारोंने शास्त्रोंमें भक्तिके प्रमुखतः दो भेद किये हैं—१-गौणी-भक्ति और २-पराभक्ति।

भगवान्की महिमा और दया-वत्सलता आदिके स्मरणसे साधकके हृदयमें भक्तिकी जो प्रथम अवस्था उदित होती है, उसीको गौणी भक्ति कहते हैं। उपासना एवं योग आदिसे गौणी भक्तिका विकास होता है। संकीर्तन-सामूहिक भजनसे मनकी प्रवृत्तियाँ पवित्र होने लगती हैं और फिर साधक एकान्त-सेवन करने लगता है। उस दशामें उसके अन्तःकरणके रजोगुण तथा तमोगुण कुछ दब जाते हैं और सत्त्वगुणका विकास होता है। उसमें गम्भीरता, मौन, मितभाषण एवं अन्तर्मुखी वृत्तिका आरम्भ हो जाता है। एकान्तमें उसको स्वतः सविकल्प-समाधिका अनुभव होने लगता है।

भक्ति-साधनामें अन्तःकरण प्रभु-गुणगान तथा नाम-जपसे स्वतः शुद्ध हो जाता है और उसकी चंचलता नष्ट हो जाती है। जब अनुरागका आरम्भ होता है तो बिना तार-के-तारकी तरह प्रभुके साथ साधकका सम्बन्ध हो जाता है और गंगा-यमुनाके संगमकी भाँति भक्त और भक्तवत्सलका अप्रच्छिन्न रूपसे संयोग हो जाता है। तब जैसे धाय (दाई) बालकको माताके पास ले जाती है, उसी प्रकार भक्तिभावना प्रभु-कृपा-प्राप्त भक्तके हृदयमें अनुराग उत्पन्न करती हुई उसे आगे बढ़ाती है। ऐसी ही दशामें भक्तके मनमें जगत्से वैराग्य उत्पन्न होता है, और ज्यों-ज्यों उसका वह वैराग्य दृढ़ और प्रगाढ़ होता है, त्यों-त्यों प्रभुमें अचल प्रीति होती जाती है और भक्त अपनेको पूर्णरूपसे प्रभुपाद-पद्ममें समर्पित कर देता है। यहीं पराभक्तिका प्रारम्भ होता है।

गौणी-भक्तिके दो भेद हैं (१) वैधी और (२) रागानुगा। जहाँ शास्त्रोंका शासन-नियम, निर्धारण, स्वीकार करते हुए भक्ति की जाती है, वह वैधी-भक्ति कहलाती है। श्रीहरिके उद्देश्यसे शास्त्रोंमें जो क्रियाएँ प्रतिपादित हैं, वे वैधी भक्तिके मार्गमें मान्य हैं और ये क्रियाएँ भगवान्के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये तथा उनके



चौथे साधन मन, वचन एवं कर्मसे भगवद्-भजनमें दृढ़ नेमके सम्पन्न होनेपर शीघ्र ही भगवत्-कृपा एवं भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। तुलसीदासजीने इस साधनका उल्लेख अन्यत्र भी किया है। पाँचवें साधन अर्थात् अपने समस्त सांसारिक सम्बन्ध—गुरु, पिता, माता, बन्धु, पतिदेव आदिको भगवान्‌में ही समझनेसे साधकके हृदयमें तृप्तिलो 'इसकामसुख' देखनेकी भावना उत्पन्न होती है।

यहाँ भी श्रीमुखसे कामादि दोषोंके निराकरण करनेपर ही अपना निवास कहा गया है; क्योंकि कपट-छल-छिद्रसे रहित निर्मल हृदयमें ही श्रीभगवान् सदा निवास करते हैं। सर्वथा निष्कामभावसे भगवान्के शरणागत होकर भजन करना भक्तिका आठवाँ साधन है। मन-वचन-कर्मसहित अनन्यभावसे शरणागत होकर जो भगवान्का कामनारहित भजन करता है, ऐसे अनन्यभक्तके निष्काम हृदयमें वे सदा विश्राम करते हैं; क्योंकि ऐसे भक्त ही भगवान्का नित्य-निवास, निम्नोक्त हैं। **समे राखे विजयेन** Vinash/Sh

## विपत्तियोंका सामना धैर्यसे करें

( श्रीरमेशचन्द्रजी बादल )

संसार शाश्वत दुःखालय है, यहाँ आनेवालेको दुःख, कष्ट, विपत्तियाँ सहन करनी ही पड़ती हैं। श्रीराम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी आदि महापुरुषोंके जीवन संकटों और विपत्तियोंसे भरे हुए थे, पर वे संकटोंकी तनिक भी परवाह न करते हुए अपने कर्तव्य-मार्गपर अविचल और अबाध गतिसे अग्रसर होते रहे। फलतः वे अपने उद्देश्यमें सफल हुए और आज संसार उनकी महिमाका गान करता है। विपत्तियों एवं कठिनाइयोंसे जूझनेमें ही हमारा पुरुषार्थ है। यदि हम कोई महत्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं तो उसमें अनेक आपत्तियोंका मुकाबला करनेके लिये हमें तैयार ही रहना चाहिये। जिन्होंने इस रहस्यको समझकर धैर्यका आश्रय ग्रहण किया है, संसारमें वे ही सुखी समझे जाते हैं। धैर्यकी परीक्षा सुखकी अपेक्षा दुःखमें ही अधिक होती है। महापुरुषोंकी यह विशेषता होती है कि दुःखोंके आनेपर वे हमारी तरह अधीर नहीं हो जाते। देवी कुन्ती तो भगवान्से विपत्तिका ही वरदान माँगती हैं, क्योंकि भगवान्का सच्चा स्मरण विपत्तिमें ही होता है। वे कहती हैं—

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।

भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

मनुष्य जीवन भी प्रकृतिकी तरह परिवर्तनशील है। जिस प्रकार प्रकृतिमें समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं, उसी प्रकार जीवनमें भी परिवर्तन होते रहते हैं। सुख-दुःख, लाभ-हानि, उन्नति-अवनति, यश-अपयश, सम्पत्ति-विपत्ति आदि सभी प्रकारकी परिस्थितियोंका सामना मनुष्यको करना ही पड़ता है। इन परिस्थितियोंसे कोई नहीं बच सकता है। सुखमय परिस्थितियोंमें हम शान्त और खुश रहते हैं, जबकि दुःख-शोक, संकट, विपत्ति और कुसमयमें हमारा चित्त अधीर हो जाता है, आकुलता बढ़ जाती है, मन अशान्त रहता है। यह मनोदशा हमारे लिये घातक हो जाती है। उचित तो यही है कि हम विपरीत परिस्थितियोंमें थोड़ा सहनशील बनें, मनको शान्त रखें और धैर्य (धीरज)-के साथ सामना करें। आपत्तियोंके उपस्थित होनेपर धैर्य रखना ही

बुद्धिमानी है। समस्याओंपर शान्त मनसे सोचें, विचार करें, अपने बुजुर्गों, शुभचिन्तक सम्बन्धियों, मित्रोंसे चर्चा करें, परामर्श लें और धैर्य रखते हुए समस्याओंका निराकरण करनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहें। इस प्रकार कुछ प्रतीक्षा करनेके बाद हमें सफलता मिलेगी। 'हारिये न हिम्मत' को सदैव स्मरण रखिये और साहसके साथ सामना करिये। समय बदलता है और विश्वास रखिये कि बुरे समयके बाद निश्चित ही अच्छा समय आयेगा। विपत्तियोंसे डरकर, हिम्मत हारनेपर विपत्तियोंका वेग कम नहीं होता, बल्कि साहस-हिम्मतके साथ उनका सामना करनेपर ही संकट दूर होता है।

सुख सपना दुःख बुढ़बुढ़ा दोनों ही मेहमान।

इनका आदर कीजिये जो भेजे भगवान्॥

विपत्तियोंमें अपना मनोबल कमजोर मत करिये। आपदाओंमें खुश रहना सीखना चाहिये। चिन्ताग्रस्त, निराश और परेशान रहकर आप अपनी और परिवारके सदस्योंकी शान्ति नष्ट न करें अपितु हर हालमें सन्तुष्ट और खुश रहना सीखिये।

वाल्मीकीय रामायणमें कहा गया है 'शोको नाशयते धैर्य' (२।६२।१५) अर्थात् शोक धैर्यका नाश करता है। शोक, दुःख और संकटके समय हमारी धैर्य (धीरज) धारण करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। धैर्य नष्ट हो जानेपर अधीरतामें हम जो भी कार्य करते हैं, वे अनुचित होते हैं। वस्तुतः शोकमें, आर्थिक संकटमें अथवा प्राणान्तकारी भय उपस्थित होनेपर जो अपनी बुद्धिसे दुःख-निवारणके उपायका विचार करते हुए धैर्य धारण करता है, उसे कष्ट नहीं उठाना पड़ता है।

सदैव स्मरण रखें कि प्रत्येक समस्याका समाधान भी होता है। समाधानका हल निकालनेके लिये धैर्य न छोड़ें और ईश्वरसे प्रार्थना करें। सीताजीसे जब हनुमान्जी मिले तो वे बहुत विचलित थीं। हनुमान्जीने कहा—हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो और सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीका स्मरण करो 'कह कपि हृदयं धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥' (रा०च०मा० ५।१५।९) ।



## कर्म-मीमांसा

( श्रीरूपचन्द्रजी शर्मा )

मनुष्यका मन एक क्षणके लिये भी शान्त नहीं रहता। मनकी दौड़ बहुत लम्बी होती है। मनकी दौड़का क्षेत्र असीमित है। वह हर क्षणमें कार्यरत रहता है। मनपर नियन्त्रण करना कठिन कार्य है—

ऋषि-मुनियोंने कर्मके तीन भेद बताये हैं, जैसे—  
( १ ) क्रियमाण कर्म—‘मैं कर्म करता हूँ’—  
इस प्रकारकी बुद्धि रखकर मनुष्य जो कर्म करता है, उसे क्रियमाण कर्म कहते हैं। जीवनकालमें जो-जो कर्म होते हैं, वे सब क्रियमाण कर्म कहलाते हैं।

**कर्मका स्वरूप**—मनुष्य कर्म करनेमें पूर्ण रूपसे स्वतंत्र है। चित्तमें जो अशुभ संस्कार होते हैं, वे अशुभ कर्म करनेके लिये मन ललचाते हैं। बुद्धि उसका मार्गदर्शन करती है, जिसका निश्चय दृढ़ होता है। वह प्रलोभनोंसे आकर्षित नहीं होता। शुभ कर्मोंसे स्वर्ग मिलता है और अशुभ कर्मोंसे नरकमें जाना पड़ता है। क्या करना और क्या नहीं करना है, इसका निर्णय लेनेमें मनुष्य स्वतंत्र है।

( २ ) संचित कर्म—क्रियमाण कर्म तो हर समय होते रहते हैं, उनमें कुछ तो भोग लिये जाते हैं और शेष इकट्ठा होते रहते हैं। इस प्रकार चित्तरूपी गोदाममें एकत्रित हुए कर्मोंको संचित कर्म कहते हैं।

**संचित कर्मोंका स्वरूप**—कर्मका भण्डार अक्षय है, भोगनेसे कभी वह भण्डार समाप्त नहीं होता। कर्मोंका नियम यह है कि—‘**नामुक्तं क्षीयते कर्म कोटिकल्प-शतैरपि।**’ अर्थात् कोई भी कर्म करोड़ों कल्प बीतनेपर भी बिना भोगे नष्ट नहीं होता। ऐसी स्थितिमें जीवकी मुक्तिका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। कर्मका भण्डार अक्षय है। उसको भोगते-भोगते जीव अनादिकालसे चौरासी लाख योनियोंमें शरीर धारण करता चला आ रहा है, फिर भी कर्मका भण्डार अक्षय ही बना रहता है।

**साधन**—जीवको मुक्ति मिल सकती है, श्रीकृष्णजी अर्जुनसे कहते हैं—

यथैथांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

अर्थात् हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण

कर्मोंको भस्म कर देती है।

अगले श्लोकमें श्रीकृष्णजी कहते हैं कि इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं है, उस ज्ञानको बुद्धिरूप योगके द्वारा शुद्ध अन्तःकरण हुआ पुरुष आत्मामें अनुभव करता है।

श्रुति कहती है—‘**ऋते ज्ञानान् मुक्तिः।**

ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती। कर्मोंका भण्डार केवल जितेन्द्रिय पुरुषके तत्त्वतः आत्मज्ञानसे भस्मसात् होता है।

( ३ ) प्रारब्ध कर्म—प्राणीके चित्तमें अनेक जन्मोंके संचित कर्मोंके भण्डार पड़े रहते हैं, जो भोगनेपर भी समाप्त नहीं होते। प्रारब्ध कर्मका अर्थ है—जो कर्म गत जन्मोंमें किये गये हैं और जिनका फल इस जन्ममें भोगना पड़ता है अर्थात् इस जन्ममें जो सुख-दुःख भोगने होते हैं, उन्हें प्रारब्ध कहते हैं। शास्त्र कहता है—

**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं।**

मनुष्यसे जो भी अच्छे-बुरे कर्म किये जाते हैं, वे भोगे बिना समाप्त नहीं होते।

**कर्म-सिद्धान्त**—प्राणियोंका समस्त जीवन तथा मरणोत्तर जीवन कर्म-तन्तुओंसे बँधा हुआ है। कर्म ही प्राणियोंके जन्म-जरा, मरण तथा रोगादि विकारोंका मूल है।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता

परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।

अहं करोमीति वृथाभिमानः

स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

(अध्यात्मरामायण २।६।६)

अर्थात् सुख और दुःख देनेवाला कोई व्यक्ति नहीं है। दुष्ट बुद्धिवाले लोग कहते हैं कि मैंने उसको कितना दुःख दिया। कुछ ऐसा कहते हैं कि मैंने यह भी किया, वह भी किया। यह झूठा अभिमान है। वास्तवमें सभी लोग अपने-अपने कर्मोंके सूत्रोंमें बँधे हुए हैं।

**नव ग्रह और कर्मवाद**—ज्योतिषशास्त्र कहता है—‘सम्पूर्ण जगत् ग्रहोंके अधीन है। ग्रह ही कर्मोंका फल देनेवाले होते हैं। सृष्टि-पालन तथा संहार भी ग्रहोंके अधीन है। कर्मके फलदाता ग्रह ही हैं।’

महाभारतमें एक प्रसंग आता है, जिसमें देवी

संसारमें कोई सुखी है, कोई दुखी है, कोई धनी है तो कोई कंगाल, कोई स्वस्थ है तो कोई बीमार। इस विचित्रताके सम्बन्धमें वैदिक शास्त्रका समाधान यह है कि सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति इत्यादि सब कुछ मनुष्यके कियेका फल है। मनुष्यके लौकिक प्रयास और उपाय जैसे होते हैं, वह वैसा ही बनता है।

शिष्यको उसकी बात सुनकर बड़ा अचरज हुआ। उसने महात्माके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा। महात्मा बोले—‘यह स्पष्ट है कि तुमने दुराचारियोंके साथ मिलकर अन्यायपूर्वक धन कमाया होगा; इसीसे उस धनका दान दुराचारी अन्धेको दिया गया और उसने उससे सुरापान और वेश्यागमन किया। मेरे न्यायपूर्वक कमाये हुए एक पैसेने एक कुटुम्बको निषिद्ध आहारसे बचा लिया। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है।’

# श्रीरामराज्यकी महिमा

( श्रीअर्जुनलालजी बंसल )

चौदह वर्षका वनवासकाल पूराकर, लंकामें आसुरी शक्तियोंका विनाशकर भगवान् श्रीराम जनकनंदिनी श्रीजानकीजी तथा भाई लक्ष्मणके साथ सकुशल अयोध्या लौट आये। इतने लम्बे अन्तरालके पश्चात् जैसे ही प्रभुने अपनी जन्मभूमिपर पदार्पण किया, नगरके मुख्य प्रवेश-द्वारपर उपस्थित भाई भरत और शत्रुघ्नके साथ उनकी समस्त प्रजाने उनका भरपूर स्वागत किया। प्रभुके दर्शन पाकर समस्त अयोध्यावासी हर्षित हो उठे।

अपने दोनों भाइयोंको साथ लेकर सारी प्रजासे मिलते हुए प्रभु अपने भवनकी ओर चल पड़े।

कृपासिंधु जब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥  
गुरु वसिष्ठ द्विज लिए बुलाई। आजु सुधरी सुदिन समुदाई॥

श्रीरामजीको अपने परिजनोंके साथ जाते देख सारी प्रजा प्रसन्नतासे झूमने लगी। इधर गुरु वसिष्ठने राज्यके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा—‘आज शुभ घड़ी है, शुभ दिन है और सारे योग भी शुभ हैं, अतः

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन॥

हे श्रेष्ठ द्विजजनो, आप सब विचारकर श्रीरामको राजगद्दी सौंपनेकी अनुमति दें।’ गुरुजीके इस प्रस्तावसे हर्षित होकर सभी ब्राह्मणोंने एक स्वरमें कहा, ‘हे ऋषिवर, प्रभु श्रीरामजीका राज्याभिषेक केवल अयोध्याके लिये नहीं, अपितु सम्पूर्ण सृष्टिके लिए आनन्ददायक होगा। अब इस निर्णयपर किसी प्रकारका सोच-विचार अथवा विलम्ब करनेका कोई कारण नहीं है। आप हमारे महाराजका तिलक शीघ्र करें।’

उधर श्रीरामजीने भवनमें पहुँच माताओंका आशीर्वाद प्राप्त किया, इस अवसरपर—

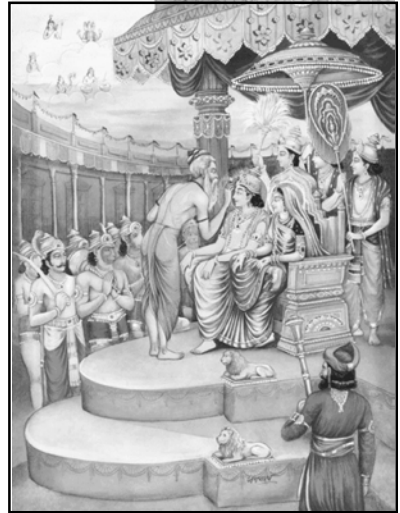
प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंघासन मागा॥  
रवि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥  
जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥  
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥

मुनि वसिष्ठने एक दिव्य सिंहासन, जिसका तेज सूर्यके समान था, मंगवाकर श्रीरामजीको उसपर विराजमान

करा दिया। उन्हींके साथ श्रीजानकीजीको देखकर उपस्थित ऋषि-मुनि हर्षित हो उठे। उल्लासके इन क्षणोंमें ब्राह्मणोंने वेद-मन्त्रोंका उच्चारण किया। आकाशमें उपस्थित समस्त देव प्रभुकी जय-जयकार करने लगे। इस शुभ अवसरपर,

प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब विप्रन्ह आयसु दीन्हा॥

सुत बिलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारी॥



श्रीवसिष्ठ मुनिने सर्वप्रथम तिलक किया, तत्पश्चात् उपस्थित श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने भी तिलककर आशीर्वाद दिया। अपने पुत्रको राजसिंहासनपर विराजमान देख माताओंने हर्षित होकर आरती उतारी।

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥  
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

श्रीरामजीका राज्याभिषेक होते देख तीनों लोकोंमें हर्ष व्याप्त हो गया। तुरंत ही सारे कष्ट समाप्त हो गये, शत्रुभावका कोई चिह्न नहीं रहा, सर्वत्र प्रेमकी अमृत-वर्षा होने लगी। सारी प्रजा अपने धर्म और वर्णाश्रमके अनुकूल आचरण करने लगी। समस्त प्रजाजन रोग और शोकसे मुक्त हो गये।

देहिक देविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा॥

ऐसी है, श्रीरामजीके राज्यकी महिमा!

विषयभोगोंका चिन्तन करनेसे उनमें आसक्ति हो जाती है और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें बाधा पडनेपर क्रोध उत्पन्न होता

क्रोधसे अज्ञान उत्पन्न होता है, अज्ञानसे स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है, स्मृतिके भ्रमित होनेसे बुद्धिका नाश हो जाता है तथा बुद्धिके नाशसे पुरुष कल्याणसे पतित हो जाता है।

यहाँ विषयासक्तिजनित विषयकामनाको सम्पूर्ण व्याधियोंका मूल कारण माना गया है। सब पापोंका मूल काम है। इस तथ्यको गीतामें अन्यत्र भी प्रकट किया गया है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३।३७)

अर्थात् रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही (प्रतिहत होकर) क्रोध हो जाता है। यह काम भोगोंसे कभी नहीं तृप्त होता। यह बड़ा पापी है। इसे ही शत्रु समझो।

योगदर्शनमें—‘अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।’

अविद्या, अहंकार, राग-द्वेष एवं मृत्युभयके नामसे जिन पाँच क्लेशोंका उल्लेख हुआ है, वे महारोग हैं। इनमें मूल कारण अविद्याको बतलाया गया है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने उत्तरकाण्डान्तर्गत मानस रोगोंके प्रकरणमें कहा है—

‘मोह सकल व्याधिह कर मूला। तिन्हते पुनि उपजहिं बहु सूला॥’

सम्पूर्ण रोगोंका मूल मोह है। उन व्याधियोंसे फिर और बहुत-से-कष्ट उत्पन्न होते हैं।

तात्पर्य यह है कि सभी प्रकारके मानसिक रोगोंका मूल कारण अविद्या, मोह और मोहजनित विषय-कामना बताया गया है।

शारीरिक रोगोंकी अपेक्षा मानसिक रोग अधिक भयानक हैं। सूक्ष्म एवं अदृष्ट होनेके कारण उनसे आसानीसे छुटकारा नहीं मिलता। एक तो उनकी पहचान ही कठिन है। दूसरे यदि उनका ज्ञान भी हो जाय तो उनके दूर करनेका उपाय विदित नहीं है। इसके लिये वैद्य भी नहीं मिलते। फलतः उनके वशीभूत होकर प्राणी विविध कष्टोंको भोगते हैं। अन्तमें कर्तव्यसे भ्रष्ट

होकर पतनके गड्ढेमें जा गिरते हैं।

नवीन मनोविज्ञानकी खोजोंसे ज्ञात हुआ है कि मानसिक रोगोंके फलस्वरूप शारीरिक व्याधियोंका आरम्भ होता है। रुग्ण शरीर रुग्ण मनोवृत्तिका परिणाम है। विषय-कामना, मानसिक आवेग, स्नायविक तनाव एवं प्रतिहिंसाकी भावनाने नाना प्रकारके शारीरिक रोगोंको उत्पन्न किया है। इसमें संदेह नहीं; भय, चिन्ता, शोक आदि मनोविकृतियोंके कारण अनेक बाह्य रोगोंका जन्म होने लगता है।

बौद्ध धर्मने आन्तरिक दोषोंकी निवृत्तिके लिये अष्टाङ्गिक मार्गका प्रतिपादन किया है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प एवं सम्यक् कर्मान्त आदिके द्वारा ही जीवनका सुधार हो सकता है। कुशल कर्मोंके आचरणसे अकुशल कर्मोंका निवारण ही सम्यक् दृष्टि है। बौद्ध धर्मने चित्तके संस्कारके लिये शुभ कर्मोंके आचरणका अनुमोदन किया है।

योगदर्शनने भावनाकी शुद्धिपर बल दिया है—

‘मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।’

(योगदर्शन १।३३)

अर्थात् सुखी मनुष्योंमें मित्रताकी भावना करनेसे, दुखी लोगोंपर दया करनेसे, पुण्यात्माओंको देखकर प्रसन्न होनेसे और पापियोंकी उपेक्षा करनेसे मलोंका नाश होकर चित्त शुद्ध हो जाता है।

चित्तके विकारोंको दूर करनेके लिये योगदर्शनकारने एक और भी उपाय बताया है—

‘वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।’

(योगदर्शन २।३३)

इसका अर्थ यह है कि विरोधी भावोंके बाधा डालनेपर उनके प्रतिपक्षी विचारोंका बार-बार चिन्तन करना चाहिये।

अशुभ विचारोंको मनसे हटानेके लिये बार-बार शुभ विचारोंका चिन्तन करना चाहिये। निषिद्ध कार्योंके पूर्वापर परिणामको सोचकर उनसे विरत हो जाना चाहिये। उदाहरणके लिये—झूठ, चोरी अथवा व्यभिचारके

निष्कर्ष यह कि आन्तरिक रोगोंकी निवृत्तिके लिये अनेक उपायोंका विधान किया गया है। इनमेंसे जिसके लिये जो अनुकूल हो, उसे उसी उपायका निरन्तर अवलम्बन करते रहना चाहिये, परंतु इसके लिये सबसे अधिक आवश्यक है—सत्संकल्प। ज्यों-ज्यों शुभ संकल्पकी शक्तिका विकास होगा, आन्तरिक रोग आप-से-आप नष्ट होने लगेंगे। संकल्पकी शक्तिके दृढ़, बलिष्ठ तथा अमोघ होनेसे समस्त मनोविकृतियाँ अवश्य दूर होंगी तथा चित्त शिवसंकल्प हो जायगा। इति शम्।

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh



## अहंकार : विनाशका बीज

( डॉ० गो० दा० फेगडे )

मानव प्राणीको जन्मसे ही कुछ दोष लगे रहते हैं, उनमें अहंकार (अहं)-का दोष सर्वप्रमुख है। उसीके कारण जीवमें अनेक दोष निर्मित होते हैं। अहंकार, अभिमान और गर्व ये शब्द लगभग एक ही अर्थके प्रतिपादक हैं। अहंकारीको दूसरोंकी तुलनामें खुदको ऊँचा समझनेकी भावना होती है। अहंकार व्यक्तिकी अहं भावनाका विकृत आविष्कार है, अभिमान या गर्व अपने साथ-साथ अपनोंपर भी होता है। सामान्यतः धन, यौवन, सुन्दरता, विद्वत्ता, सत्ता आदिका अहंकार हो जाता है, वास्तवमें किसी भी बातका अहंकार या अभिमान व्यर्थ होता है; क्योंकि ये सब चीजें क्षणभंगुर होती हैं, जो आज हैं और कल नष्ट होनी हैं। जब मनुष्यका शरीर और जीवन ही नाशवान् है तो और चीजोंका कहना ही क्या? दूसरी बात, संसारमें एकसे बढ़कर एक व्यक्ति होते हैं '**बहुरत्ना वसुन्धरा**' फिर भी मनुष्य अभिमान क्यों करता है? इसका कारण मनुष्यका अज्ञान है। उसकी सोच कुँएमें रहनेवाले मेंढककी तरह होती है।

पृथ्वीपर यूनान एक छोटा-सा देश है, उसका एक शहर एथेन्स है। उस एथेन्समें सुकरात नामका तत्त्ववेत्ता रहता था। उसके एक मित्रका एथेन्स शहरमें एक भव्य और सुन्दर महल था, उसको अपने महलपर बहुत गर्व था। एक दिन सुकरातने उसको पृथ्वीका नक्शा लानेको कहा और पूछा, 'बताओ इसमें यूनान देश कहाँ है? अब बताओ एथेन्स कहाँ है? अब इसमें अपना महल दिखाओ।' सुकरातके मित्रने कहा—पृथ्वीके नक्शेपर यूनान एक छोटे-से बिन्दुकी तरह है और फिर उसमें महल कहाँ दिखेगा? सुकरातके दोस्तकी ही तरह हमें भी अपनी छोटी-छोटी चीजोंका अभिमान हो जाता है।

मनुष्यकी महानता उसके नम्र और विनयशील स्वभावसे आँकी जाती है। अपने पूर्व राष्ट्रपति डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम उसका जीता-जागता उदाहरण हैं। कहावत है—'**थोथा चना बाजे घना**' आधे-अधूरे लोग ही अहंकारके कारण हवामें चलते हैं, महात्मा तो फलोंसे

लदे हुए पेड़की तरह हमेशा नम्रतासे झुके हुए होते हैं। महान् विद्वान् आदि शंकराचार्यको कौन नहीं जानता? एक बार वे समुद्रके किनारेपर अपने एक शिष्यके साथ बैठे हुए थे। उनके शिष्यने उनसे कहा, 'भगवन्! आपका ज्ञान इस सागरकी तरह अथाह है।' उन्होंने तुरंत अपनी छड़ी सागरके जलमें डुबोकर निकाली और कहा—'मेरा ज्ञान इस छड़ीपर लगे हुए पानी जितना भी नहीं है।' श्रीमान् शंकराचार्यका यह हाल है तो आजके तथाकथित विद्वानोंका ज्ञान कितना होगा? संस्कृतमें कहा जाता है, '**विद्या विनयेन शोभते**' अर्थात् विद्या (ज्ञान) विनम्रतासे सुशोभित होती है, अहंकारसे नहीं।

अभिमान अज्ञानकी अवस्थामें ही होता है, जब मनुष्यको सत्यका ज्ञान हो जाता है, तब उसका सब अभिमान मिट जाता है।

अभिमानका अन्त हमेशा बुरा होता है। एक कागजका टुकड़ा पवनके सहारेसे उड़ता हुआ पहाड़की चोटीपर पहुँच गया, वह अभिमानपूर्वक शिखरसे बोला, 'देखो, मैं तुझसे कितना ऊँचा हूँ!' इतनेमें एक हवाका झोंका आया और वह पुनः जमीनपर आ गया।

एक विद्वान् गृहस्थ एक बार नावमें बैठकर नदी पार कर रहे थे, उन्हें अपनी विद्वत्तापर बहुत गर्व था। उन्होंने नाविकसे पूछा, 'तूने भगवद्गीता पढ़ी है क्या?' नाविक बोला 'ना', फिर उसने पूछा, 'तू रामायण-महाभारत तो जानता ही होगा?' नाविक बोला, 'ना'। तब उस विद्वान्ने गर्वसे कहा, 'तो फिर तेरा आधा जीवन तो बर्बाद हो गया।' इतनेमें तूफान आया, नाविक बोला, 'महाशय, आपको तैरना तो आता ही होगा?' विद्वान् बोला, 'नहीं'। तब नाविक बोला, 'तो फिर आपका सारा जीवन बर्बाद हो गया।'।

प्राचीन समयकी कथा है, महिकावती नामक नगरीमें कार्तिक नामका राजा था। एक बार उसका रावणके साथ युद्ध हुआ। युद्धमें रावणने उसके दोनों हाथ तोड़ डाले, वह टूटी बाँहोंसे परेशान होकर भटकते-भटकते सह्याद्रिपर्वतपर आ गया। वहाँ भगवान् श्रीदत्तात्रेय प्रभुजी स्नानके उपरान्त

मनुष्यमें अहंकार जन्मजात होता है, वह तमोगुणका कार्य है। सांसारिक जीवनमें प्रत्येक व्यक्ति कम-ज्यादा अहंकारमें डूबा होता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीताके सोलहवें अध्यायमें अहंकारको 'आसुरी सम्पत्ति' कहा है, आसुरी सम्पदाके लोग क्रोधी और अहंकारी होते हैं। पुराणोंमें वर्णित अधिकांश राक्षस अहंकारी होते थे। अहंकार ही उनके नाशका कारण होता था। इसका सर्वप्रमुख उदाहरण रावण है। रावणके पास क्या नहीं था? उसके पास विद्वत्ता, सत्ता, साम्राज्य, शौर्य, धन-वैभव, पतिव्रता पत्नी, शूर एवं आज्ञाकारी पुत्र सब कुछ था। फिर भी अहंकारके कारण उसका नाश हुआ। महाभारतमें दुर्योधनका नाश भी अहंकारसे ही हुआ था। उसे भीष्म, द्रोण, गान्धारी, विदुर, व्यासजी आदि सभी हितैषियोंने समझाया, परंतु अहंकारके कारण उसने किसीकी बात न मानी, फलतः कुलसहित नष्ट हो गया। वस्तुतः अहंकार मनुष्यका विवेक नष्ट कर देता है। अहंकार कलह, क्रोध और अधोगतिका बीज होता है। वह अन्तमें दुःख और अशान्तिका कारण बनता है, नम्रता शत्रुताका नाश करती है, लेकिन अहंकार खुदका नाश करता है और शत्रुताका निर्माण करता है।

## संयमका प्रथम सोपान—वाकसंयम

इसपर गणेशजीने मौनकी व्याख्या करते हुए कहा, ‘बादरायण, किसी दीपकमें अधिक तेल होता है, किसीमें कम, परंतु तेलका अक्षय भण्डार किसी दीपकमें नहीं होता। उसी प्रकार देव, मानव, दानव सभी देहधारियोंकी प्राणशक्ति सीमित है, परंतु असीम किसीकी नहीं। इस प्राणशक्तिका पूर्णतम लाभ वही पा सकता है, जो संयमसे उसका उपयोग करता है। संयम ही समस्त सिद्धियोंका आधार है और संयमका प्रथम सोपान है—वाक्-संयम। जो वाणीका संयम नहीं रखता, उसकी जिह्वा बोलती रहती है। बहुत बोलनेवाली जिह्वा अनावश्यक बोलती है, और अनावश्यक शब्द प्रायः विग्रह और वैमनस्य पैदा करते हैं, जो हमारी प्राण-शक्तिको सोख डालते हैं। वाक्-संयमसे यह समस्त अनर्थ-परम्परा दग्धबीज हो जाती है। इसीलिये मैं मौनका उपासक हूँ। [प्रेषक—श्रीअरुणजी गुप्ता]

( श्रीरामलाल )

महात्मा पूनतानम् भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त और उच्चकोटिके रसिक संत थे। वे परम भागवत थे। उन्होंने अपनी श्रीकृष्ण-उपासनासे केरल प्रदेश ही नहीं, समस्त भारतवर्षको गौरवान्वितकर मलयालम् भाषा और साहित्यको भगवद्भक्तिसे सम्प्लावित कर दिया। केरल प्रदेशके सत्रहवीं शतीके प्रसिद्ध संत, 'नारायणीयम्' भक्तिकाव्यके रचयिता मेपुत्तूर भट्टनारायण, महान् तपस्वी बिल्वमंगल और परम भगवद्भक्त राजकुमार मानवेद उनके समकालीन थे। गुरुवायूरके इष्टदेव भगवान् नारायणके भक्तरूपमें चारों संत अत्यन्त प्रसिद्ध थे। विशेष बात यह है कि विशिष्ट संतके रूपमें महात्मा पूनतानम् केरलके लोकमानसमें इन तीनोंसे कहीं अधिक प्रतिष्ठित तथा प्रख्यात थे। मेपुत्तूर भट्टनारायण उच्चकोटिके विद्वान् थे। उन्होंने श्रीमद्भागवतके संक्षिप्तरूपमें १०० दशकों और १०३६ श्लोकोंमें विद्वत्तापूर्ण ढंगसे 'नारायणीयम्' काव्यकी रचना की। महात्मा बिल्वमंगलके जीवन-वृत्तान्तके सम्बन्धमें सामग्रीका अभाव है। वे 'कृष्णकर्णामृत'के रचयिता बिल्वमंगलके नाम-रूपसे प्रसिद्ध लीलाशुकसे भिन्न व्यक्ति थे। लीलाशुक तो चैतन्य महाप्रभुके पूर्ववर्ती थे। पूनतानम्के समकालीन महात्मा बिल्वमंगल सत्रहवीं शतीमें विद्यमान थे। उनकी कृपासे राजकुमार मानवेदको भगवान् श्रीकृष्णका बालरूपमें दर्शन हुआ था। जब मानवेदने भगवान्का आलिंगन करना चाहा, तब उन्होंने कहा कि 'बिल्वमंगल स्वामीने मुझसे आलिंगनकी बात नहीं कही है।' जब उसने उनको बलात् आलिंगनमें भरना चाहा, तब वे एक मोरपंख छोड़कर अदृश्य हो गये। भट्ट नारायणने अम्पलप्पुल-नरेश देवनारायणको बिल्वमंगल स्वामीका शिष्य कहा है। देवनारायण भट्ट नारायणके संरक्षक थे। राजकुमार मानवेद व्याकरण-शास्त्रके महान् पण्डित थे। उनको 'प्रज्ञातपातंजल' कहा जाता है। उन्होंने 'कृष्णागीति' की रचना की। महात्मा पूनतानम्की विशेषता यह है कि उन्होंने सीधी-सादी सर्वसाधारणके समझनेयोग्य मलयालम्

भाषामें अपने आराध्य गुरुवायूर-मन्दिरमें प्रतिष्ठित भगवान् ब्रजनारायण श्रीकृष्णका यश गाया। उनकी रचना सरल और सहज-सुगम है। उन्होंने केरल प्रदेशमें श्रीकृष्णकी रसमयी भक्ति प्रवाहित की।

सत्रहवीं शताब्दीमें केरल प्रदेशके गुरुवायूर नगरमें संत-साहित्य, भागवत-धर्म और भगवद्भक्तिके विकासमें अमित योगदान दिया। इसका नाम पहले कुरुवायूर था। कुरुवायूरने केरल प्रदेशके जन-जीवनमें आध्यात्मिक जागृति—क्रान्तिका भगवद्भक्तिका सृजन किया। इस क्रान्तिके गर्भमें साहित्यिक और दार्शनिक जागरणका भी समावेश सुलभ था। प्रत्येक वर्ष गुरुवायूरके संतोंके संविधानमें केरलकी जनता तीर्थयात्रीकी तरह उपस्थित होकर अध्यात्मका उपदेशामृत प्राप्तकर अपना जीवन कृतार्थ और सफल करती थी—सत्रहवीं शतीके गुरुवायूरकी यह आध्यात्मिक विशिष्टता है। मेपुत्तूर भट्ट नारायण, मानवेद, स्वामी बिल्वमंगल और महात्मा पूनतानम्की प्रेरणासे गुरुवायूरके मन्दिरका वातावरण नारायण-नारायणके परम पवित्र उच्चारणसे निरन्तर परिपूर्ण रहता आया है और चिरकालतक भगवद्विग्रहके दर्शनार्थी और तीर्थयात्री श्रीनारायण-नारायणके उच्चारणसे अपने-आपको कृतार्थ करते रहेंगे।

केरल प्रदेशके पवित्र भूमिभागमें एक मध्यम श्रेणीके ब्राह्मणकुलमें महात्मा पूनतानम्ने सन् १५४७ ई०में जन्म लिया था। उनके पिताका नाम नीलकण्ठ बताया जाता है। उन्हें मलयालम् भाषाका बोध तो था, पर उनका संस्कृत-अध्ययन नहीं-के बराबर था। वे श्रीमद्भागवतका अवलोकन और पाठ करते रहते थे। इसके फलस्वरूप उन्हें संस्कृत भाषाका भी थोड़ा-बहुत ज्ञान हो गया था। उन्होंने अपने पदोंमें तथा 'कृष्णकर्णामृत'के मलयालम्-भाषानुवादमें नीलकण्ठनामक गुरुका संस्तवन किया है। इन्हीं नीलकण्ठको उनका पिता बताया जाता है। ऐसी धारणा है कि उपनयन-संस्कारके अवसरपर पिताने गुरुरूपमें उन्हें गायत्रीमन्त्र प्रदान किया था।

अतएव स्पष्ट है कि नीलकण्ठ ही उनके पिता और गुरु—दोनों थे। महात्मा पूनतानम्का वास्तविक नाम क्या था, इसका पता नहीं है। पूनतानम् तो उस घरका नाम था, जो तिरुमालंकनुके निकट वालुवनादके नेनमेनि स्थानमें स्थित था। इसी घरमें उनके ससुर (पत्नीके पिता)—ने अपने पुत्ररूपमें जामाताको गोद लिया था। घरके नामपर ही वे पूनतानम् कहे जाने लगे। विवाहके पश्चात् लम्बे समयतक पूनतानम्-दम्पतीको संतान न हुई। उन्होंने गुरुवायूरके आराध्यदेवता भगवान् नारायणसे संतानके लिये प्रार्थना की और उनकी कृपासे पुत्रका जन्म हुआ। पर वह कालकवलित हो गया। कहा जाता है कि जिस दिन उस शिशुका अन्नप्राशन-संस्कार था, उसी दिन उसका शरीरान्त हुआ। यह भी कहा जाता है कि माँ बच्चेको रसोईघरमें छोड़कर कुएँपर पानी लेने गयी थी कि बच्चा ठीक चूल्हेके पास पहुँच गया और आगमें जलकर प्राणोंसे हाथ धो बैठा। पूनतानम्के जीवनको इस दुःखद घटनाने भगवान्के सम्मुख मोड़ दिया; संसारकी असारता और जागतिक सम्बन्धकी नश्वरता तथा पारिवारिक मोहके अन्धकारके स्थानपर उनके जीवनमें सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माकी रसमयी भक्ति, शाश्वत आत्मज्ञान और अलौकिक दिव्य प्रेमकी त्रिवेणी प्रवाहित हो उठी। एक कम पढ़े-लिखे, सीधे-सादे गृहस्थ पूनतानम् महान् संतके पदपर प्रतिष्ठित हो उठे।

यद्यपि उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये अनेक प्रयत्न किये, भाग्यको कोसते हुए भगवान्‌की कृपाका दरवाजा खटखटाया; अगणित प्रार्थनाएँ कीं, ‘संतानगोपाल’ मन्त्रका स्तोत्रपाठ किया; अपनी भाषामें ‘संतानगोपाल’की ही तरह ‘कुमाराहरणम्’की रचना की; सन्देह, निराशा-आशाकी घाटियोंमें भ्रमण किया; तथापि अपने प्रयत्न निष्फल देखकर उन्होंने विवेक-धैर्यका आश्रय लिया। उन्होंने भव-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त की तथा आत्मज्ञानके प्रकाशमें ‘ज्ञानप्यान’—ज्ञानगीताकी रचना की। उन्होंने कहा कि ‘जब हमारे हृदयके रंगमंचपर भगवान् बालकृष्ण नृत्य कर रहे हैं, तब हमें अपने स्वार्थकी परितृप्तिके लिये संतानकी आवश्यकता ही क्या है?’ इस तरह उन्होंने

अपने ही जैसे असंख्य निःसंतान प्राणियोंको भगवान्की शिशुलीलाके आस्वादनमें ही आत्मसंतोष प्राप्त करनेका उपाय बताया। महात्मा पूनतानम्का जीवन वैराग्यरससे समृद्ध हो उठा।

भगवान्की कृपाशक्ति भक्त पूनतानम्की रक्षामें सदा तत्पर रहती थी। एक दिनकी घटना है, वे गुरुवायूर जा रहे थे। उनपर डाकुओंने रास्तेमें आक्रमण किया। गुरुवायूर पहुँचकर भगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन करनेका समय बीतने लगा। पूनतानम्के लिये दर्शनका विलम्ब असह्य हो उठा। उस घोर संकटमें उन्होंने करुणावरुणालय भगवान् श्रीनन्दनन्दनका आवाहन किया, उनसे रक्षा करनेकी प्रार्थना की। उन्होंने आकुलताके आवेगमें कहा—‘हे देव! द्रौपदीकी रक्षाके लिये आप कितनी शीघ्रतासे आ पहुँचे थे; गजको निर्दयी ग्राहसे बचानेके लिये आपने साक्षात् स्मरण-अवतार ले लिया, उसकी पुकारमें ही प्रकट हो गये।’ भक्तकी वाणी थी; भक्तने दुःखमें उनका आवाहन किया था; भगवान्की रक्षा-शक्ति साकार हो उठी। इतनेमें सैनिकोंकी एक टुकड़ी आ पहुँची, डाकु भयभीत होकर नौ-दो-ग्यारह हो गये।

संत पूनतानमूने वैष्णव धर्म अथवा भागवत धर्मका प्रश्रय लिया। प्रत्येक प्राणीको भगवदाश्रयका ही वरण करना चाहिये—इस अकाट्य सिद्धान्तको उन्होंने अपने जीवनमें पूर्णरूपसे चरितार्थ कर दिखाया। नित्य श्रीमद्भागवतके श्रद्धापूर्वक पठन-अवलोकनसे उनकी चित्तवृत्ति भगवद्भक्तिसे सम्पोषित हो उठी थी। उनके उपास्य ब्रजेन्द्रनन्दन बालकृष्ण थे। उनकी श्रीकृष्णमें अप्रतिम अनन्य निष्ठा थी और प्रचारसे दूर रहकर वे एकान्त-वासमें ही संतुष्ट रहते थे। उनके जीवनकी पवित्रताकी आधारशिला उनकी एकान्त-निष्ठा थी। आत्मश्लाघा और आत्मविज्ञापनको वे जीवनकी उन्नतिके पथमें बाधक मानते थे।

मेपुत्तूर भट्टनारायण और पूनतानम् समकालीन थे। पूनतानम् कम पढ़े-लिखे थे, पर भट्टनारायण उच्चकोटिके विद्वान् थे। प्रारम्भिक अवस्थामें विद्वत्ताके मदसे उन्मत्त होकर वे पूनतानम्को एक साधारण प्राणी समझते थे।



महात्मा पूनतानम्के भगवद्धाम प्राप्त करनेका विचित्र विवरण उपलब्ध होता है। भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये नृत्योन्मादमें उन्होंने अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया। एक दिन उन्होंने अपने आराध्य श्रीबालकृष्ण और मित्रोंको प्रीतिभोजमें पधारनेका निमन्त्रण दिया। जब भोजन बन गया और मित्रगण उपस्थित हुए, वे अपने प्रधान अतिथि श्रीबालकृष्णका स्वागत करनेके लिये अकेले ही सड़कपर आ गये। थोड़ी देरके बाद वे नाचते-गाते हुए भोज-स्थलपर पहुँचे। वे श्रीबालकृष्णके अंग-प्रत्यंगका वर्णन करते हुए पद गा रहे थे। उन्होंने प्रमुख अतिथिके आसनके सामने मर्यादापूर्वक सभी पकवानोंसे पूर्ण भोजनकी थाली रख दी। प्रभुने उनके लिये प्रत्यक्ष उपस्थित होकर भोजन स्वीकार किया। भोजकी समाप्तिपर उन्होंने मित्रों और अन्य लोगोंके लिये अदृश्य भगवान्से अपनेको विमानमें बैठाकर वैकुण्ठ ले चलनेकी प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि 'वैकुण्ठसे विमान आया हुआ है।' उनकी स्त्रीने लोगोंसे क्षमा माँगते हुए निवेदन किया कि 'बुढ़ापेसे मस्तिष्क कमजोर हो जानेसे वे अकबक कर रहे हैं।' महात्मा पूनतानम्के कथनमें उनके घरकी दासीने विश्वास किया। लोगोंके देखते-देखते दोनोंने एक ही साथ शरीर छोड़कर भगवद्धामकी यात्रा की। इस तरह आनन्द-नृत्योन्मादमें महात्मा पूनतानम्ने भगवान्का शाश्वत सांनिध्य प्राप्त किया। इस समय उनकी अवस्था ९३ वर्षकी थी। वे सन् १६४० ई० तक जीवित थे। महात्मा पूनतानम् भगवान्के अप्रतिम भक्त और असाधारण गृहस्थ संत थे। केरल प्रदेश ही नहीं, मध्यकालीन भारतके वे अनुपम भागवतरत्न थे। उनका नाम अमर है।

एक भारतीय विशेषज्ञसे उन्होंने परिचय भी कर लिया है।  
‘लेकिन प्रारम्भमें यहाँकी नस्ल ऐसी नहीं थी।’  
ह्यूमैन गम्भीर हो गये। ‘अच्छा, तुम्हारी किताबोंमें यह  
कामधेनु शब्द बार-बार आया है। इसे तुम जानते हो?’  
उनके नेत्र डॉक्टरके मुखपर स्थिर हो गये।







यमराजकी भाँति डण्डा मारनेवाले दूकानदार तो शायद पूरे अहिंसक हिन्दू हैं।' उनके स्वरमें घृणा थी।

'हम उसका दण्ड भी पा रहे हैं।' मैंने मस्तक झुकाकर स्वीकार किया 'गायोंके मूक अश्रु अभिशाप बनकर हिन्दूजातिको लग गये हैं और वह अपना कर्मफल भोग रही है।' मुझे गहरा धक्का लगा था।

'अरे नहीं' जैसे मेरे अन्तःकष्टको उन्होंने देख लिया हो 'यह पाप तो आज दुनियाके कुछ आदमी ही कर रहे हैं और दयाको छोड़कर वे खूँखार बन गये हैं।' इस एकान्तमें भी उन्हें सम्भवतः विश्वकी परिस्थितिका कुछ आभास मिल जाता था।

'आपको यह गाय कहाँ मिल गयी?' इस खंडहर निवासीके पास खरीदनेके लिये मूल्य तो होनेसे रहा। प्रसंग भी नीरस हो गया था। मैंने उसे बदलना ठीक समझा। यह मैं लक्षित कर चुका था कि अपनी गायकी चर्चासे वे बहुत उल्लसित हो उठते हैं।

'बड़ी लम्बी कहानी है।' एक दीर्घ श्वास लेकर वे चुप हो गये। पता नहीं क्यों उनके नेत्रोंसे अश्रु टपकने लगे थे।

(४)

ह्यूमैनको गाय मिल गयी और उसे पाते ही उन्होंने अपना प्रयोग प्रारम्भ किया। एक-दो दिनमें ही उन्हें पता लग गया कि आगरे-जैसे बड़े शहरमें रहकर वे प्रयोग नहीं कर सकते। पन्द्रह मील दूर यमुनाकिनारे उन्होंने एक ढाकका जंगल खरीद लिया। वहीं एक छोटा बँगला बनवा लिया और उस गायको लेकर आ गये।

सिंचित जंगल घाससे भर जाना ही था। चारों ओर काँटेदार तार लगा दिये गये थे। बँगलेपर साहब, खानसामा, गाय और उसकी बछड़ीको छोड़कर कोई प्राणी नहीं रहता था।

पहले ही दिन खानसामाको आश्चर्य हुआ जब साहब एक छोटी लकड़ीमें रूमाल बाँधकर सबेरे गाय चराने निकले। 'यह मेजको झाड़नेके लिये तो ठीक था, पर गाय चरानेके लिये.....' फिर साहब एक चरवाहा क्यों नहीं रख लेते?' बेचारा खानसामा चुप रहा। वह जानता था कि उसका साहब झक्की है।

दो महीनोंसे ह्यूमैन अपनेको तैयार कर रहे थे।

अनेक उलट-फेर उन्होंने अपने भोजन तथा रहन-सहनमें किये थे। चाय वे छोड़ चुके थे और धूपमें टहलनेका अभ्यास भी कर चले थे।

घिरे हुए जंगलमें साहब अपने झाड़नसे गायके ऊपर बैठनेवाले मक्खी-मच्छर उड़ते हुए उसके पीछे-पीछे घूमते रहे। कहीं रोकनेकी आवश्यकता नहीं थी बड़ी नालियोंमें स्वच्छ जल भरा था। दोपहरको खानसामा आदेशके अनुसार वहीं भोजन दे गया। पहले दिन भूमिपर बैठकर साहबने भोजन किया।

पतलून छूट गयी। उससे पृथ्वीपर बैठनेमें अड़चन होती थी। हाफ पाइंट और हाफ कमीज बस, हैट धूपसे बचानेको चाहिये ही। काँटा-चम्मच छोड़कर उन्होंने हाथसे भोजन करना प्रारम्भ किया। खानसामा शहर जाये तो रोटी पहुँचाये कौन? केक, बिस्कुटके बदले टिक्कर ठोंके जाने लगे।

'साहब क्या पागल हो गया है!' खानसामा कभी-कभी सोचता, वह सुबह गायके पैर धोकर वह गंदा पानी मुँहमें डालता है। हिन्दुओंकी तरह फूल, रोलीसे उसकी पूजा करता है। शामको गायके पास घीका चिराग रातभरके लिये जलाता है। जैसे गाय कोई बच्चा है, जो अँधेरेमें डर जायगी। रातको चटाई डालकर वहीं जमीनपर सो रहता है, दिनभर अकेले रहते-रहते वह ऊब जाता था।

'साहब बहुत भला है। भले वह आधा पागल हो।' कभी-कभी खानसामा सोचता। 'मैं जैसी रोटी बनाता हूँ, वैसी खा लेता है। गायके पास तो झाड़ू खुद देता है। कमरेमें भी झाड़ू न दिया हो तो अपने-आप देने लगता है। कभी डाँटता नहीं। तनख्वाह ठीक पहलीको दे देता है। खुदा उसका पागलपन दूर करे।' खानसामाको निश्चय हो गया था कि साहबके दिमागमें जरूर कुछ खराबी है।

'आखिर यह गाय है किसलिये?' सच पूछिये तो गायने खानसामाको अच्छी उलझनमें डाल दिया था। 'दूध उसकी बछड़ी पीती है। साहब कभी उसे दुहता नहीं और दुहकर करे भी क्या; उसने तो दूध पीना ही छोड़ दिया है। जरूर इस गायपर कोई जिंद सवार है और उसीने साहबको पागल बना दिया है।' कई बार

सहसा कल शामकी बातें स्मरण हो आयीं। ‘ये इतने रूपोंमें साक्षात् धर्म मुझे वेष्टित किये हैं और वे कामधेनु पुकार रही हैं।’ मैंने सब चने गायके सम्मुख चबूतरेपर डाल दिये और नीचे जाकर उसकी चरण-रज मस्तकसे लगा ली!

## क्या सुख-भोग ही जीवन है ?

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

क्या सुख-भोग ही जीवन है ? नहीं, सुख-भोग जीवन हो ही नहीं सकता। क्यों ? क्योंकि सुख हमेशा बना नहीं रह सकता। जीवन तो उसे कहते हैं जो नित्य, अविनाशी, रसरूप है।

सुख है क्या ? सुख एक परिस्थितिमात्र है और परिस्थिति हमेशा एक-जैसी नहीं रहती—प्राकृतिक नियमके अनुसार निरन्तर बदलती रहती है। जहाँ सुख होगा, वहाँ दुःखको भी होना ही है। संयोगका सुख है तो वियोगका दुःख होगा ही, उससे बचा नहीं जा सकता। इसीलिये कहा है कि सुख रोकनेपर भी चला जाता है और दुःख बिना बुलाये चला आता है। या यूँ कहें कि कोई भी सुखको जानेसे और दुःखको आनेसे नहीं रोक सकता।

सुख, दुःख है क्या ? अनुकूल परिस्थिति सुख है, प्रतिकूल परिस्थिति दुःख है। कामनापूर्ति सुख है और कामना-अपूर्ति दुःख है। ऐसा होता ही नहीं कि किसीकी सभी कामनाएँ पूरी हों और किसीकी एक भी कामना पूरी न हुई हो। सभीकी कुछ कामनाएँ पूरी होती हैं और कुछ नहीं पूरी होतीं। राजा दशरथकी भी तो कामना पूरी नहीं हुई—वह रामको युवराज बनाना चाहते थे और हुआ क्या ? राम वनको चौदह वर्षके लिये गये।

यह जीवनका अकाट्य सत्य है कि सुख और दुःखका क्रम हर-एकके जीवनमें रहेगा ही। अतः यदि हम सुख-भोगको ही जीवन मान लेंगे तो दुःख भी भोगना ही पड़ेगा।

तो प्रश्न उठता है कि सुख आया तो उसका भोग न करें तो क्या करें और क्या सुख-दुःखसे अतीत भी कोई जीवन है ? है, और उसकी प्राप्ति बहुत सहज है। सिर्फ दृष्टिकोण बदलना है, जो हर-एकके लिये सम्भव है। वह है, प्रभुसे प्रार्थना—

‘मेरे नाथ,……… दुखी प्राणियोंके हृदयमें त्यागका बल और सुखी प्राणियोंके हृदयमें सेवाका बल प्रदान करें……’।

वस्तुतः सुख-दुःख मात्र साधन-सामग्री है। उसका सदुपयोग करके हम वास्तविक रस-रूप जीवनको प्राप्त करते हैं।

यदि हम सुखका भोग करेंगे अर्थात् सुखमें जीवन-बुद्धि होगी तो दुःख भोगना ही पड़ेगा। अन्यथा ‘जो सुखका

दास नहीं है, वह दुखी नहीं होता। इसलिये दुःखसे बचनेके लिये सुखकालमें सुखकी वासनाका त्याग अनिवार्य है।’

सुख-दुःखका सदुपयोग है क्या ? दुःखके भोगसे बचनेके लिये उन कामनाओं जिनकी अपूर्ति और जिन वासनाओंके कारण (जैसे नेत्रहीन है तो देखनेकी वासना) दुःख हो रहा है तो उनका त्याग करना है और सुखका भोग न करके सुखद परिस्थितिका सदुपयोग सेवामें करना है। कोई भी सर्वांशमें न तो दुखी होता है और न ही सर्वांशमें सुखी। अतः जिस अंशमें दुःख है तो त्याग अपनायें और जिस अंशमें सुख है तो सेवा करें। यही सुख-दुःखका सदुपयोग है।

सुखद परिस्थितिमें सेवा क्या है ? इसके बारेमें बड़ा भ्रम है। जबतक हम उदार नहीं होंगे, सेवा हो ही नहीं सकती। उदारका यह अर्थ नहीं है कि मन्दिरमें पंखे टँगा दिये और तीन पुस्तका ब्लेडपर नाम लिखवा दिया। प्याऊ तो लगाया, परन्तु वहाँ अपने नामका बड़ा बैनर लगा दिया।

उदारता का अर्थ होता है दुःखियोंको देखकर करुणित होना और सुखियोंको देखकर प्रसन्न होना। जब यह हमारे जीवनमें उतर जायगा। तब हमसे स्वतः स्वभावतः सेवा होगी। शरीरबलका सुख है तो निर्बलोंके काम आयेंगे—धनबल है तो निर्धनोंके काम आयेंगे, आदि।

जिन साधनोंसे हम सेवा करते हैं उन्हें सेव्यकी ही धरोहर मानकर सेवा करेंगे तब तो सच्ची सेवा होगी और अपने विकासके लिये हितकारी होगी, अन्यथा हम कर्तृत्वके अभिमानमें फँस जायँगे। वस्तुतः जो सुखको बनाये रखनेका प्रयत्न करता है, सुख उससे छिन जाता है और जो सुखको बाँट देता है, उसे आनन्द मिल जाता है।

जब हम सुख-दुःखका सदुपयोग करके सुख-दुःखसे अतीत जीवनमें प्रवेश पाते हैं, तब भगवान् रामकी तरह युवराज पद (सुख)–से न हर्ष होता है और न वनवास (दुःख)–से विषाद। हम समतामें रहते हैं।

इस प्रश्न ‘क्या सुख-भोग ही जीवन है ?’ का बहुत सहज, स्पष्ट और सुन्दर उत्तर मुंशी प्रेमचन्दद्वारा लिखी कहानी ‘ईदगाह’ के नायक बालक हामिदने दिया है, जिसने ईदके मेलेमें गुब्बारों, मिठाई और खिलौनोंके प्रति बाल-सुलभ आकर्षणपर विजय प्राप्त करते हुए अपनी

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

दादीमाँके लिये लोहेका एक चिमटा खरीदा। क्यों? क्योंकि उसकी आँखोंके सामने तो तवेपर रोटी सेंकते समय चिमटेके अभावमें दादीमाँकी उंगलियोंके जलनेका दृश्य तैर रहा था। अधिकांश लोगोंने यह कहानी पढ़ी होगी। जिन्होंने न पढ़ा हो, वे अवश्य पढ़ें—जीवनका अर्थ और जीनेकी सही राह मिल जायगी।

प्रश्नगत शीर्षकका उत्तर इसमें भी निहित है कि हम सिर्फ अपने लिये जी रहे हैं, या दूसरोंके लिये। अपने

लिये जी रहे हैं तो भोग, दूसरोंके लिये जी रहे हैं तो सेवा। यही सिद्धान्त है। ‘जो दूसरोंके हितके लिये जीता है, वह महान् है। जो अपने लिये जीता है, वह अभागा है। दूसरोंके हितके लिये जीओ। सुख-भोगके लिये जीना पाप है। दूसरोंके लिये जीना महान् पुण्य है।’

एक बात और, जिसने सुख बाँटनेके आनन्द (Joy of sharing)-का रसास्वादन कर लिया है, वह सुखका भोगी हो ही नहीं सकता। [ प्रेषक—श्रीहरी मोहनजी ]

## भगवान् कृष्णका प्राकट्य

( श्रीरामेश्वरजी पाटीदार )

[ कविके द्वारा 'श्रीकृष्णचरितमानस' के नामसे एक अत्यन्त लालित्यपूर्ण, पद्यबद्ध ग्रन्थकी रचना हुई है, जिसमें भगवान् कृष्णकी प्रायः सभी मुख्य लीलाओंका आठ काण्डोंमें वर्णन किया गया है। इसी ग्रन्थके 'कृष्ण-जन्म-प्रसंग' को यहाँ सानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है—सम्पादक ]

घाती खलन्हँ अवतरिहिं जब धरि सुभ सो परम निकट अई।  
भइ सकल दिसि उज्ज्वल मधुर स्वर कोकिला बोलत भई॥  
अनुकूल भै सब असुभ ग्रह अरु अधम घन नभ दुरि गए।  
रोहिनि नखत पर ससि चलेउँ सब जोग सुभ फलप्रद भए॥  
दुष्टनिकन्दन जब अवतरित होनेवाले थे, वह शुभ  
घड़ी अत्यन्त निकट आ गयी। सारी दिशाएँ उज्ज्वल हो  
गयीं और कोयल कोमलवाणीसे बोलने लगी। सारे  
अमंगलकारी ग्रह शुभ अवस्थामें आ गये और पापी ग्रह  
घने आकाशमें जा छिपे। जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें  
भ्रमण करने लगा, तब सारे योग शुभफलदायक हो गये।

सब सरित भइ मृदु सलिल कल कल करत निज निज दिसि बहे ।  
सोभित सकल तरु बाग कानन फूल फल बिनु रितु लहे ॥  
निज बछुन्हँ लखि सब धेनु अयनन्हि नेह अमिय बहावहीं ।  
सब साक आमिष भोजि तजि निज बैर प्रीति बढ़ावहीं ॥

सारी नदियाँ मृदुल जलसे पूरित हो कल कल ध्वनिसे अपनी अपनी दिशाओंसे बहने लगी। वन एवं उद्यानोंके समस्त (ऋतुव्रती) वृक्ष बिना ही ऋतुके फूलों एवं फलोंसे लद गये। अपने बछड़ोंको देखकर गायें अपने स्तनोंसे स्नेहरूपी अमृत बहाने लगी। समस्त शाक एवं मांस खानेवाले जीव वैर त्यागकर परस्पर प्रेम बढ़ाने लगे।

सुर नाग किंनर जच्छ अरु गंधर्व नाचत सोहर्ही ॥  
सिवसम्भु अज प्रमुदित करहिं अस्तुति जगत आधार की।  
मनु सकल सुभ लच्छन करहिं अगवानि प्रभु अवतार की ॥  
पुष्पोंसे आच्छादित होकर अत्यन्त मनोहर हुई  
चारों दिशाएँ हर्षसे भरकर मधुरध्वनिसे गाने लगी।  
देवता, नाग, किन्नर, यक्ष और गन्धर्व नाचते हुए शोभा  
पाने लगे हैं। शिवजी और ब्रह्माजी बड़े आनन्दसे  
भगवान्‌की स्तुति करने लगे; मानो ये सब शुभशकुन  
भगवान्‌के अवतारकी अगवानी कर रहे हों।

भादौ बदि आठवँ दिवस बुध कर सुभद रहेउँ।  
उदित प्राचि बृष रोहिनि नखत इन्दु पैठेउँ॥  
भादौ माहके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको, जब  
बुधका शुभदायक वार था, उस समय पूर्व दिशामें वृष  
राशि उदित हो रही थी, जिसके रोहिणी नक्षत्रमें चन्द्रमाने  
प्रवेश किया।

रिद्धि सिद्धि महि प्रगटि नृप बरषहिं जलद प्रधार।  
रही अरध निसि बंदिगृह प्रगटे तारनहार॥  
हे परीक्षित ! पृथ्वीपर रिद्धि-सिद्धि प्रकट हो गयी  
और मेघ जलकी मोटी-मोटी धाराएँ बरसाने लगे। वह  
अर्धरात्रिका समय था, जब बन्दीगृहमें संसारको तारनेवाले  
भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए।

## साधनोपयोगी पत्र

(१)

### कर्मका उत्तरदायित्व कर्तापर है

सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला।..... सगोत्र विवाहका शास्त्रोंमें एक स्वरसे निषेध किया गया है। सगोत्रा स्त्रीसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसे चाण्डालके समान माना गया है। यदि अनजानमें सगोत्रा कन्यासे विवाह हो जाय तो उसे त्यागकर प्रायश्चित्तके रूपमें चान्द्रायण व्रत करनेका विधान मिलता है। इससे सिद्ध है कि सगोत्र कन्याके साथ किया गया विवाह सम्बन्ध पाप है। तभी उसके लिये प्रायश्चित्त बतानेवाले वचनोंकी संगति लगती है।

पाप और पुण्यमें मनुष्य केवल अपनी इच्छासे प्रवृत्त होता है। शास्त्रोंने पापका निषेध और पुण्यका विधानमात्र कर दिया है। पापीको दण्ड और पुण्यात्माको उसके कर्मानुसार पुरस्कार मिलता है। यदि केवल प्रारब्ध या दैवकी प्रेरणासे पापमें प्रवृत्ति हो तो मनुष्यको दण्ड और पुरस्कार नहीं मिलने चाहिये। किंतु कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है, ऐसा शास्त्रका वचन है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि कर्मोंके करनेका सारा उत्तरदायित्व कर्तापर ही है।

धन, भोग-सामग्री, सुख एवं दुःख आदि अपने पूर्वजन्मोंके कर्मोंके फल हैं। किसको कितना सुख, कितना दुःख मिले—यह प्रारब्धपर निर्भर है। किंतु उसे प्राप्त करनेके लिये जो चेष्टा होती है, वह मनुष्यकी अपनी रुचिसे होती है। अतः यदि वह चेष्टा शास्त्रानुकूल, धर्म और न्यायसे युक्त हुई तो वह पुण्य है और उसका भावी फल भी सुखमय है; इसके विपरीत यदि शास्त्रविरुद्ध, अधर्म और अन्यायसे युक्त चेष्टा हुई तो उसका भावी फल दुःख है, क्लेश है। जैसे किसीको दस हजार रुपये मिलना है, यह प्रारब्धका फल है; किंतु उसे प्राप्त करनेके अनेक मार्ग हैं। प्रारब्ध मार्गका निर्देश नहीं करता; उसे चुनता है मनुष्य अपनी ही इच्छासे। वह उसके लिये धर्म एवं न्यायपूर्वक व्यापार भी कर सकता है, और चोरी आदि अन्यायसे भी उसे प्राप्त कर सकता है। एक मार्ग पुण्यमय है और दूसरा पापमय है। दोनोंसे धन उतना ही मिलेगा, जितना प्रारब्धमें है; किंतु असत् मार्गको जिसने स्वेच्छासे अपनाया, उसने

भविष्य-जीवनमें अपने लिये दुःखकी नींव खोद ली।

इसी प्रकार स्त्री-सुख भी पूर्वकर्मका निर्धारित फल हो सकता है; किंतु उसे पानेके लिये सन्मार्ग भी है, असत् मार्ग भी है। शास्त्रके अनुसार विधि-निषेधके पालनपूर्वक अपने वर्णकी उत्तम कन्याके साथ जो वैदिक विधिसे विवाह सम्पन्न होता है, वह सन्मार्ग है। सगोत्रा कन्या अथवा नीच कुलकी कन्याको कामवश अपनाना, परायी स्त्रियों अथवा वेश्याओंसे सम्बन्ध स्थापित करना आदि पाप एवं असन्मार्ग हैं। यह पहलेसे विधि निर्धारित था, ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इसके लिये शास्त्रोंमें स्पष्टतः दण्डविधान किया गया है।

शास्त्रकी मर्यादा यही है। यही धर्म है और यही ईश्वरकी आज्ञा है। इसीके पालनसे मनुष्यका भला हो सकता है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

### हिन्दू विधवा बहनके साथ कैसा बर्ताव करें ?

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिल गया था, उत्तरमें विलम्बके लिये क्षमा करेंगे। आप लिखते हैं 'मैं जातिका मोहमडन हूँ, किंतु मेरे हृदयमें सदा दयाका स्रोत बहता रहता है। मनुष्यमात्रकी सेवा करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।' यह बहुत ही अच्छी बात है। अपका यह गुण आपके अन्य बन्धुओंके लिये भी अनुकरणीय है। वास्तवमें दया तो मनुष्यमात्रका गुण होना चाहिये। हिन्दू हो या मुसलमान, निर्दयता सभीके लिये कलंककी बात है। मनुष्यकी ही क्यों, सम्पूर्ण जीवमात्रकी सेवाको परम कर्तव्य समझना चाहिये। चींटीसे लेकर मनुष्यतक सभी प्राणी भगवान्के अंश हैं; अतः भगवद्बुद्धिसे उनकी सेवा, उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना ही सच्ची भगवत्सेवा है।

आपने इसी भावसे 'एक हिन्दू विधवा बहनकी भलाईके लिये अपना तन-मन-धन लगा रखा है,' यह बड़े सौभाग्यकी बात है। निराश्रयको आश्रय देना, असहाय और अनाथ विधवाओंकी रक्षा करना सबके लिये महान् पुण्यकार्य हैं। परंतु इसके लिये शुद्ध नीयत

४-उन बहनसे मेरा यही अनुरोध है कि अब भी वे अपनेको सुधारें। मनुष्यका शरीर बार-बार नहीं मिलता। इसको पाकर जो अपने कल्याणके लिये यत्न नहीं करता, वह मूढ़ और भाग्यहीन है। पूर्व-जन्ममें न जाने कौन-सा अपराध हुआ था, जिससे उन्हें इस जन्ममें किशोरावस्थामें ही वैधव्यका कष्ट भोगना पड़ा। अब और भी पाप बढ़नेपर उन्हें किन नरकोंमें सड़ना पड़ेगा, यह कहा नहीं जा सकता। जो विधवा स्त्री संयम छोड़कर भोगविलासमें आसक्त होती है और मर्यादाका उल्लंघन करके अपने जीवनको कलंकित करती है, वह अपने ही हाथों अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारती है। उनको अब भी चेतना चाहिये, धर्म और सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। वे पापपंक में डूबकर अपनेको धधकती हुई नरकाग्निमें न झोंकें। पिछले पापोंके लिये रोकर सच्चे हृदयसे भगवान्से क्षमा माँगें। याद रखें—वे हिन्दू देवियोंकी सन्तान हैं, जो सतीत्वकी रक्षाके लिये हँसते-हँसते प्रज्वलित अग्निमें कूद पड़ती थीं। अतः उन्हींके पद-चिह्नोंपर चलकर भगवान्का भजन करते हुए अपने जन्म और जीवनको सफल करें। शेष प्रभूकृपा।



## व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा सायं ५।५० बजेतक	सोम	शतभिषा दिनमें ३।२ बजेतक	२७ अगस्त	×
द्वितीया रात्रिमें ६।५५ बजेतक	मंगल	पू०भा० सायं ४।४९ बजे	२८ "	मीनराशि दिनमें १०।२३ बजेसे।
तृतीया " ७।३६ बजेतक	बुध	उ०भा० " ६।९ बजेतक	२९ "	भद्रा दिनमें ७।१६ बजेसे रात्रिमें ७।३६ बजेतक, कजली तीज, संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७।५० बजे, मूल सायं ६।९ बजेसे।
चतुर्थी " ७।४२ बजेतक	गुरु	रेवती रात्रिमें ६।५७ बजेतक	३० "	मेघराशि रात्रिमें ६।५७ बजेसे, पंचक समास रात्रिमें ६।५७ बजे।
पंचमी " ७।१९ बजेतक	शुक्र	अश्वनी " ७।१६ बजेतक	३१ "	श्रीचन्द्रषष्ठी, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।३० बजे, मूल रात्रिमें ७।१६ बजेतक, पू०फा० का सूर्य सायं ५।३७ बजे।
षष्ठी सायं ६।२६ बजेतक	शनि	भरणी " ७।६ बजेतक	१ सितम्बर	भद्रा सायं ६।२६ बजेसे, वृषराशि रात्रिमें १२।५६ बजेसे, हलषष्ठी (ललहीछठ)
सप्तमी " ५।८ बजेतक	रवि	कृत्तिका सायं ६।२९ बजेतक	२ "	भद्रा प्रातः ५।४७ बजेतक, श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत।
अष्टमी दिनमें ३।२८ बजेतक	सोम	रोहिणी " ५।३४ बजेतक	३ "	मिथुनराशि रात्रिशेष ४।५६ से, उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत।
नवमी " १।२९ बजेतक	मंगल	मृगशिरा दिनमें ४।१९ बजेतक	४ "	भद्रा रात्रिमें १२।२२ बजेसे।
दशमी " ११।१६ बजेतक	बुध	आर्द्रा " २।५५ बजेतक	५ "	भद्रा दिनमें ११।१६ बजेतक।
एकादशी " ८।५४ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु " १।१४ बजेतक	६ "	कर्कराशि दिनमें ७।३८ बजेसे, जया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी प्रातः ६।२७ बजेतक	शुक्र	पुष्य " ११।३३ बजेतक	७ "	भद्रा रात्रिशेष ४।० बजेसे, प्रदोषव्रत, मूल दिनमें ११।३३ बजेसे।
चतुर्दशी रात्रिमें १।४० बजेतक	शनि	आश्लेषा " ९।५५ बजेतक	८ "	भद्रा दिनमें २।५१ बजेतक, सिंहाराशि दिनमें ८।२१ बजेसे।
अमावस्या " ११।२९ बजेतक	रवि	मघा " ८।२१ बजेतक	९ "	कुशोत्पाटिनी अमावस्या, मूल दिनमें ८।२१ बजेतक।

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-शरद-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदारत्रिमें १।३१ बजेतक	सोम	पू०फा० प्रातः ६।५९ बजेतक	१० सित०	कन्याराशि दिनमें १२।४२ बजेसे,
द्वितीया " ७।५३ बजेतक	मंगल	उ०फा० " ५।५३ बजेतक	११ "	× × ×
तृतीया " ६।३८ बजेतक	बुध	चित्रा रात्रिशेष ४।४५ बजेतक	१२ "	तुलाराशि सायं ४।५७ बजेसे, हरितालिका तीजव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध।
चतुर्थी सायं ५।४७ बजेतक	गुरु	स्वाती " ४।४८ बजेतक	१३ "	भद्रा प्रातः ६।१२ बजेसे सायं ५।४७ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी " ५।२६ बजेतक	शुक्र	विशाखा " ५।२३ बजेतक	१४ "	वृश्चिकराशि रात्रिमें ११।१५ बजेसे, ऋषिपंचमी।
षष्ठी " ५।३६ बजेतक	शनि	अनुराधा अहोरात्र	१५ "	लोलाकषष्ठी व्रत।
सप्तमी " ६।१८ बजेतक	रवि	अनुषाधा प्रातः ६।२८ बजेतक	१६ "	भद्रा सायं ६।१८ बजेसे, मूल प्रातः ६।२८ बजेसे, महारविवार व्रत।
अष्टमी रात्रिमें ७।२७ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा दिनमें ८।१ बजेतक	१७ "	भद्रा प्रातः ६।५३ बजेतक, धनुराशि दिनमें ८।१ बजेसे, कन्या-संक्रान्ति रात्रिमें १।५४ बजे, श्रीराधाष्टमीव्रत, विश्वकर्मापूजा, शरदऋतु प्रारम्भ।
नवमी " ९।२ बजेतक	मंगल	मूल " १०।११ बजेतक	१८ "	मूल दिनमें १०।१ बजेतक।
दशमी " १०।५५ बजेतक	बुध	पू० षा० " १२।२२ बजेतक	१९ "	मकरराशि रात्रिमें ७।० बजेसे।
एकादशी " १२।५८ बजेतक	गुरु	उ० षा० " २।५५ बजेतक	२० "	भद्रा दिनमें ११।५७ बजेसे रात्रिमें १२।५८ बजेतक, पद्माएकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " ३।२ बजेतक	शुक्र	श्रवण सायं ५।३२ बजेतक	२१ "	श्रीवामनद्वादशीव्रत।
त्रयोदशी रात्रिशेष ४।५६ बजेतक	शनि	धनिष्ठा रात्रिमें ८।३ बजेतक	२२ "	कुम्भराशि प्रातः ६।४८ बजेसे, पंचकारम्भ प्रातः ६।४८ बजे, शनिप्रदोषव्रत।
चतुर्दशी अहोरात्र	रवि	शतभिषा " १०।१८ बजेतक	२३ "	अनन्तचतुर्दशीव्रत
चतुर्दशी प्रातः ६।३२ बजेतक	सोम	पू० भा० " १२।१० बजेतक	२४ "	भद्रा प्रातः ६।३२ बजेसे रात्रिमें ७।६ बजेतक, मीनराशि सायं ५।४२ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा।
पूर्णिमा " ७।४१ बजेतक	मंगल	उ० भा० " १।३६ बजेतक	२५ "	पूर्णिमा, प्रतिपदाश्राद्ध।



## पढ़ो, समझो और करो

(१)

### सद्गुणवती बहू

पूर्वबंगालके एक गाँवमें हाराणचन्द्र चक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनके पुत्रका नाम था अनुकूलचन्द्र। हाराणबाबू संस्कृतके विद्वान् थे, थोड़ी अंगरेजी जानते थे। पर अंगरेजी शासनमें अच्छी चाकरी (नौकरी) पानेके लिये अंगरेजीकी आवश्यकता समझकर उन्होंने पुत्र अनुकूलको अंगरेजी पढ़ायी। वह पहले स्कूलमें पढ़ता। फिर ढाकामें जाकर उसने एम०ए० तक कर लिया। हाराणबाबूकी जान-पहचान काफी थी। अतः कुछ प्रयत्न तथा सिफारिशसे अनुकूलचन्द्रको अच्छी सरकारी नौकरी लग गयी। पढ़े-लिखे सरकारी नौकरके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके लिये चारों ओरसे कन्यावालोंकी माँग आने लगी। आखिर एक उच्च कुलके किंतु निर्धन पिताकी कन्याके साथ शुभगुणसम्पन्न उदार हृदयके श्रीहाराणचन्द्रने अपने पुत्रका विवाह कर दिया। बहू शशिबाला बड़ी सुन्दर, सुशीला, बुद्धिमती, विनम्र स्वभावकी और सेवाभावपरायण आयी। इससे हाराणचन्द्र बहुत प्रसन्न थे। अनुकूलको तो मानो परम सुखमय अत्यन्त दुर्लभ अमूल्य रत्न ही मिल गया। उसके मनमें बड़ा आह्लाद था—ऐसी रूपगुणवती पत्नीको पाकर, पर अनुकूलचन्द्रकी माता मृणालिनीको संतोष नहीं था। वह कुछ लोभी स्वभावकी थी। उसने अपने पढ़े-लिखे सरकारी चाकरीमें लगे हुए गुणी पुत्रके विवाहमें बहुत बड़े दहेजकी आशा कर रखी थी और लोग देनेको तैयार भी थे; परंतु हाराणचन्द्रने केवल गुणवती लड़की देखी, दहेजको ठुकरा दिया और पत्नीकी पूरी सम्मति न होनेपर भी उससे अनुकूलका विवाह कर दिया। मृणालिनीने समझा था कि दहेजमें कुछ तो आयेगा ही, पर शशिबालाके कुलशीलसम्पन्न विद्वान् पिता ऋण लेकर या घर-द्वार बेचकर दहेज दें—यह हाराणचन्द्रको सर्वथा अस्वीकार था, इसलिये

कन्याके पिताके आग्रह करनेपर भी उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। इससे मृणालिनीका क्षोभ और भी बढ़ गया। कुछ दिन तो ठीक चला। फिर मनका क्षोभ बाहर प्रकट होने लगा और वह शशिबालाके प्रति दुर्व्यवहार, उसके माता-पिताके लिये दुर्वचनके रूपमें उत्तरोत्तर क्रमशः बढ़ने लगा। बेचारी निर्दोष सेवाशील बहूपर मिथ्या दोष लगाये जाने लगे और बात-बातमें उसपर गालियोंकी बौछार होने लगी। एक दिन मृणालिनीने एक जलती लकड़ी उसके पैरपर दे मारी, वह दर्दसे एक बार तो चीख उठी, पर फिर तुरंत ही चुप हो गयी। श्रीहाराणचन्द्र अपनी पत्नीके इस दुर्व्यवहारसे बड़े दुखी हो गये। उन्होंने उसे समझानेका बहुत प्रयत्न भी किया, पर मृणालिनीको वे समझा नहीं पाये। मन-ही-मन कुढ़ते रहे अपनी पत्नीकी इस नीचतापर!

अनुकूलचन्द्रके दुःखका पार नहीं था। कई बार उसके मनमें बड़े जोरका उफान उठता, पर शशिबालाके सुधास्त्रावी शीतल वचन-सलिलसे वह शान्त हो जाता। बड़ा विचित्र स्वभाव था शशिबालाका। लगातार इतने भयानक अत्याचार होनेपर भी उसके मनमें कुछ भी विचार नहीं आया। न उसके चेहरेपर ही कभी कोई विकारकी रेखा प्रकट हुई। भीषण वज्राघात सहनेवाले अचल अटल गिरिराजके समान वह प्रसन्नतासे सब कुछ सहती रही।

एक दिन माताके भीषण दुर्व्यवहारसे अनुकूलचन्द्र अत्यन्त दुखी हो गये और उन्होंने अलग हो जानेकी बात सोची। वे कुछ कड़ी बात कहने ही वाले थे कि शशिबाला उन्हें अलग ले गयी। बड़ी नम्रताके साथ समझाकर बोली—‘आप इतने क्षुब्ध क्यों होते हो? माताजीने दहेजकी बड़ी आशा लगा रखी थी, उनकी वह आशा पूरी नहीं हुई। इससे उनको क्षोभ होना स्वाभाविक ही है। कामनापर चोट लगती है तब वह क्रोधके रूपमें प्रकट होती है एवं क्रोध एक ऐसी बीमारी

हैं जो मनुष्यको कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे वंचित करके उसके द्वारा उसीके अकल्याणका कार्य करवा देती हैं। माताजी इसी बीमारीसे ग्रस्त हैं, वे अपनी सहज चेतनामें नहीं हैं। इसीसे वे हमलोगोंके साथ अमित दुर्व्यवहारके रूपमें अपनी ही बड़ी हानि कर रही हैं। इस अवस्थामें हम लोगोंका यह कर्तव्य कदापि नहीं कि हम अपने मनकी सुख-शान्तिकी आशासे उनके साथ बदलेमें अनुचित व्यवहार करके उनकी बीमारीको और भी बढ़ा दें। हमें सब कुछ सहन करके उनका हितसाधन करना तथा विशुद्ध मनसे सेवा करके उनकी बीमारीको मिटानेका प्रयत्न करना चाहिये। सेवाका आदर—सेवाका मूल्यांकन तो हो ही नहीं, सेवाको सेवा न मानकर उसे तंग करना बतलाया जाय और सेवाके बदलेमें तिरस्कार-अपमान, भर्त्सना-कुवाच्य दिये जायँ, गाली-गलौज किया जाय। इतनेपर भी सेवाका कार्य बिना विश्कोभ, शान्तिके साथ चलता रहे; तभी वास्तविक सेवा होती है। पागल तो अपने मनकी करेगा ही, उसके बर्तावको देखनेसे काम नहीं चलता। माताजी इस समय पागल-सी हो गयी हैं। वे तुम्हारी जननी हैं। तुमको उन्होंने हृदयका रस देकर पाला-पोसा है। अतएव वे मेरी परम पूजनीया हैं। तुम एवं तुम्हारी धर्मपत्नी होनेके कारण मैं—उनके उपकार-ऋणसे कभी उऋण हो ही नहीं सकते। एक बात और है—अपमान एवं गाली लेनेसे लगती है। हम लोग उसे पुरस्कार क्यों न मानें?’

इस प्रकार शशिबालाने पतिको बहुत-सी बातें समझाकर शान्त कर दिया और वह सब कुछ सहर्ष सहन करती हुई बड़ी बुद्धिमानी तथा सावधानीके साथ श्वसुर-सासकी तथा स्वामीकी यथायोग्य सेवा करती रही। वह अपने स्वभावपर अटल बनी रही। पर अभी इसकी तपस्याका फल प्रकट नहीं हुआ—सास मृणालिनीका व्यवहार नहीं बदला।

एक दिन पुनः रसोईघरमें गुस्सेमें पागल मृणालिनी  
जलती लकड़ी हाथमें लेकर शशिबालाकी ओर दौड़ी,

गुस्सेके जोशमें होश नहीं था, पैर फिसल गया और गिर पड़ी। बड़ी चोट लगी। साथ ही जलती लकड़ीसे उसकी साड़ीमें आग लग गयी और वह जलने लगी। शशिबाला पानीका कलसा लेकर सामनेसे आ रही थी, वह चीख सुनते ही कलसा वहीं छोड़कर भागी और उसने जाकर सासको उठाया, उसकी आग बुझायी, पर इसी बीच वह बुरी तरह जल गयी थी। आग बुझानेमें शशिबालाके हाथ भी कई जगह झुलस गये, पर उसने इसकी परवा न कर सासको उठाकर अपनी गोदमें सुला लिया। मृणालिनी इस अवस्थामें कराहती हुई भी उसपर गालियोंकी बौछार कर रही थी। गालियोंके साथ ही कह रही थी—‘तेरे ही कारण मैं गिरी, मेरे चोट लगी और मैं जल गयी, तेरा सत्यानाश हो।’ शशिबाला कुछ नहीं बोली। वृद्ध हाराणचन्द्र नित्यकी भाँति नदी-किनारे स्नान-भजन करने गये हुए थे। अनुकूलबाबू भाग्यसे उस दिन घर आये हुए थे। वे दौड़े। दोनों पति-पत्नीने मिलकर माँको चारपाईपर सुलाया। वैद्य बुलाये गये। चिकित्सा प्रारम्भ हुई। शशिबाला सच्चे तन-मनसे सासकी सेवामें जुट गयी। दवादारू देना, पट्टी लगाना, मल-मूत्र फेंकना, थूक-कफ हाथमें लेकर फेंकना, अपने हाथसे मुँहमें ग्रास देना, अंग दबाना—सभी कार्य वह बड़ी खुशी-खुशी करने लगी। घरका काम तो सँभालती ही थी, पर सेवामें जरा भी त्रुटि नहीं आने दी। वह रात-दिन सासके पास ही बनी रहती। सास मृणालिनी धीरे-धीरे ठीक होने लगी—साथ ही अब उसका हृदय भी पलटने लगा। चार-पाँच महीने वह खटियापर रही। इसी बीच शशिबालाकी अकृत्रिम सेवाके कारण उसके हृदयमें अपनी करनीके लिये पश्चात्तापकी ऐसी भयानक आग भड़की कि उसके हृदयकी समस्त मलराशिको जला दिया। शशिबालाकी सहज मधुर आदर्श सेवाके अमृत-रससे उसके सारे पाप धुल गये और उसके शुद्ध हृदयमें शशिबालाके प्रति सच्चे आदर तथा स्नेहका समुद्र उमड़ पड़ा। वह अच्छी हो चली थी। एक दिन



## मनन करने योग्य

### महापुरुषोंके अपमानसे पतन

वृत्रासुरका वध करनेपर देवराज इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी। इस पापके भयसे वे जाकर एक सरोवरमें छिप गये। देवताओंको जब ढूँढ़नेपर भी देवराजका पता नहीं लगा, तब वे बड़े चिन्तित हुए। स्वर्गका राज्यसिंहासन सूना रहे तो त्रिलोकीमें सुव्यवस्था कैसे रह सकती है। अन्तमें देवताओंने देवगुरु बृहस्पतिकी सलाहसे राजा नहुषको इन्द्रके सिंहासनपर तबतकके लिये बैठाया, जबतक इन्द्रका पता न लग जाय।

इन्द्रत्व पाकर राजा नहुष प्रभुताके मदसे मदान्ध हो गये। वे देवोद्यानोंमें, नन्दनवनके उपवनोंमें, कैलासमें, हिमालयके शिखरपर, मन्दराचल, श्वेतगिरि, सह्य, महेन्द्र तथा मलयपर्वतपर एवं समुद्रों और सरिताओंमें अप्सराओं तथा देवकन्याओंके साथ भँति-भाँतिकी क्रीडाएँ करते थे। एक दिन उनकी दृष्टि देवराज इन्द्रकी प्रिया महारानी शचीपर पड़ी। उन्होंने इन्द्रपत्नी शचीदेवीको अपनी पत्नी बनाना चाहा। शचीके पास दूतके द्वारा उन्होंने संदेश भेजा—‘मैं जब इन्द्र हो चुका हूँ, इन्द्राणीको मुझे स्वीकार करना ही चाहिये।’

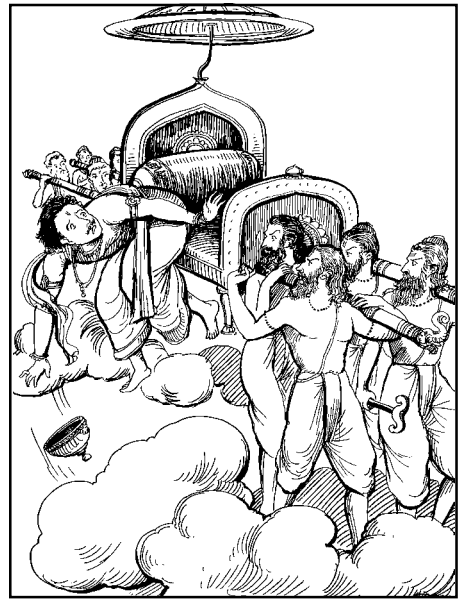
पतिव्रता शचीदेवी बड़े संकटमें पड़ीं। अपने पतिकी अनुपस्थितिमें पतिके राज्यमें अव्यवस्था हो, वह भी उन्हें स्वीकार नहीं था और अपना पतिव्रत्य भी उन्हें परम प्रिय था। वे भी देवगुरुकी शरणमें पहुँचीं।

बृहस्पतिजीने उन्हें आश्वासन देकर युक्ति बतला दी। देवगुरुके आदेशानुसार शचीने उस दूतके द्वारा नहुषको कहला दिया—‘यदि राजेन्द्र नहुष ऐसी पालकीपर बैठकर मेरे पास आयें, जिसे सप्तर्षि ढो रहे हों तो मैं उनकी सेवामें उपस्थित हो सकती हूँ।’

काम एवं अधिकारके मदसे मतवाले नहुषने महर्षियोंको पालकी ले चलनेकी आज्ञा दे दी। राग-द्वेष तथा मानापमानसे रहित सप्तर्षिगणोंने नहुषकी पालकी

उठा ली। लेकिन वे ऋषिगण इस भयसे कि पैरोंके नीचे कोई चींटी या अन्य क्षुद्र जीव दब न जायँ, भूमिको देख-देखकर धीरे-धीरे पैर रखते चलते थे। उधर कामातुर नहुषको इन्द्राणीके पास शीघ्र पहुँचनेकी आतुरता थी। वे बार-बार ऋषियोंको शीघ्र चलनेको कह रहे थे। लेकिन ऋषि तो अपने इच्छानुसार ही चलते रहे।

‘सर्प! सर्प!’ (शीघ्र चलो! शीघ्र चलो!) कहकर नहुषने झुँझलाकर पैर पटका। संयोगवश उनका पैर पालकी ढोते महर्षि अगस्त्यको लग गया। महर्षिके नेत्र लाल हो उठे। पालकी उन्होंने पटक दी और हाथमें जल लेकर शाप देते हुए बोले—‘दुष्ट! तू अपनेसे बड़ोंके द्वारा पालकी ढोवाता है और मदान्ध होकर पूजनीय लोगोंको पैरसे टुकराकर ‘सर्प, सर्प’ कहता है, अतः सर्प होकर यहाँसे गिर!’



महर्षि अगस्त्यके शाप देते ही नहुषका तेज नष्ट हो गया। भयके मारे वे काँपने लगे। शीघ्र ही वे बड़े भारी अजगर होकर स्वर्गसे पृथ्वीपर गिर पड़े। महापुरुषोंके प्रति अपमानजनक व्यवहार उनके पतनका कारण बना।

## श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीपर उपयोगी प्रमुख प्रकाशन

( श्रीकृष्णजन्माष्टमी २ सितम्बर रविवारको एवं श्रीराधाष्टमी १७ सितम्बर सोमवारको है। )

**श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन ( कोड 571 ) ग्रन्थाकार—** इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। राजसंस्करणमें अच्छे तथा मोटे कागजपर प्रकाशित यह पुस्तक साहित्यिक मनोभूमिको संस्कारित करनेवाली तथा श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये अनुपम रसायन है। मूल्य ₹ १८०

**कन्हैया ( कोड 869 ), गोपाल ( कोड 870 ), मोहन ( कोड 871 ), श्रीकृष्ण ( कोड 872 )—** श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके आधारपर लिखी गयी चित्रकथाकी इन पुस्तकोंको भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर उनके परमधामगमनतककी चुनी हुई लीलाओंसे सजाया गया है। प्रत्येकका मूल्य ₹ १५

**पदरत्नाकर ( कोड 50 ) पुस्तकाकार—** इन पदोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके चित्रणके साथ ज्ञान, वैराग्य, चेतावनी आदि अनेक विषयोंपर सरल काव्यात्मक प्रकाश डाला गया है। मूल्य ₹ ११०

**श्रीराधा-माधव-चिन्तन ( कोड 49 ) पुस्तकाकार—** इसमें श्रीराधाकृष्णका अलौकिक प्रेम ही श्रीराधा-माधव-चिन्तनके रूपमें प्रस्फुटित है। भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनके अद्भुत समन्वयके साथ यह ग्रन्थ-रत्न सात प्रकरणोंमें विभक्त है। मूल्य ₹ १००

**महाभाव-कल्लोलिनी ( कोड 526 ) पुस्तकाकार—** इस पुस्तकमें श्रीराधाकृष्णकी विभिन्न लीलाओंसे सम्बन्धित ११६ पदोंका संग्रह है। मूल्य ₹ ८

**मधुर ( कोड 343 )—** इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्न शक्ति श्रीराधाजी एवं महाभाग गोपिकाओंके दिव्यातिदिव्य प्रेममय उद्गारोंका ७२ झोंकियोंके रूपमें मनोहर काव्यात्मक चित्रण है। मूल्य ₹ ३०

## भगवन्नाम-माहात्म्यका परिवर्धित संस्करण अब सिर्फ ₹ ५ में

भगवन्नाम लेखनात्मक जपके लिये पहले यह पुस्तक ( कोड 1990 ) मूल्य ₹ १० प्रकाशित की गयी थी। इस पुस्तकमें ५६, ३०४ नाम-लेखन, भगवन्नाम-महिमापर लेख, प्रत्येक पेजपर गोस्वामी तुलसीदासकी नाम-महिमा-सम्बन्धी चौपाई और अन्तमें भगवन्नाम-महिमापर विभिन्न महापुरुषोंके विचार दिये गये हैं। अब इसमें ३६,००० नाम-लेखनकी सुविधा है। इसका ( कोड 2153 ) मूल्य ₹ ५ पाठकोंकी माँगपर कर दिया गया है। आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

**शिव-आराधना ( कोड 2127 )—** आप लोगोंके सुझाव एवं शिवभक्तोंके विशेष आग्रहपर शिव-स्तुतियोंका यह लघु संग्रह प्रकाशित किया गया है। इसमें विशेषरूपसे सर्वसाधारणमें प्रचलित शिवचालीसा ( जय गिरिजापति दीन दयाला ) एवं शिव-आरती ( जय शिव ओंकारा )—को प्रकाशित किया गया है। इसमें गीताप्रेससे पूर्व प्रकाशित शिवचालीसा एवं शिव-आरतीका भी समायोजन किया गया है। इसके अतिरिक्त शिवताण्डवस्तोत्रम्, शिवमहिम्नःस्तोत्रम् आदि स्तुतियाँ भी दी गयी हैं। आशा है, पाठक इससे लाभान्वित होंगे। मूल्य ₹ ७

## सितम्बर माहमें उपलब्धि सम्भावित

**महाभारत ( कोड 728 )—** हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें] सेट। मूल्य ₹ २२५० (प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹ ३७५)





COLLECTION OF VARIOUS  
-> HINDUISM SCRIPTURES  
-> HINDU COMICS  
-> AYURVEDA  
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

!creator of  
hinduism  
server!



KAPWING

## नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

## महाभारत-सटीक (तेलुगु)-के सभी खण्ड उपलब्ध

कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹	कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹
2141	प्रथम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार— आदिपर्व, सभापर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००	2145	पञ्चम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्रीपर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००
2142	द्वितीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—वनपर्व सचित्र, सजिल्द।	४००	2146	षष्ठ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार— शान्तिपर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००
2143	तृतीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार— विराटपर्व, उद्योगपर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००	2147	सप्त खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार— अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहणपर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००
2144	चतुर्थ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार— भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, सचित्र, सजिल्द।	४००				

उपर्युक्त सातों खण्ड एक साथ मँगवानेपर मूल्य ₹ २,८०० (रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च ₹ २६० अतिरिक्त) एवं एक खण्डका मूल्य ₹ ४०० (रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च ₹ ४५ अतिरिक्त) डाकद्वारा पुस्तकें मँगवानेके लिये आर्डर गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५ (फोन नं० 0551-2334721; 2331250, website : [gitapress.org](http://gitapress.org)) को ही भेजें। भुगतान मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजें।

तेलुगु भाषाकी पुस्तकोंका मुख्य बिक्री-केन्द्र-गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक दूकान 41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार हैदराबाद-500095, मोबा. नं० 8019555962, 9573650611

नल-दमयन्ती (कोड 2150) असमिया—मूल्य ₹ ६, ईशावास्योपनिषद् (कोड 1844) मराठी—मूल्य ₹ १०

## अब उपलब्ध

**हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (कोड 518)**—यह विशेषाङ्क भारतीय संस्कृतिके विभिन्न पक्षों—हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व, उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। कुछ विद्वानोंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है तो कुछने इसे 'हिन्दू-संस्कृतिका विश्वकोश' कहा है। भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसन्धानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय तथा उपयोगी दिशा-निर्देशक है। इस अङ्कमें परिशिष्टाङ्ककी सामग्री समायोजित कर दी गयी है जिससे यह और भी उपयोगी बन गया है। मूल्य ₹३००

**२४ वाँ दिल्ली पुस्तक-मेला सन् २०१८**—इस वर्ष भी प्रगति मैदान, नयी दिल्लीमें (दिनाङ्क २५ अगस्तसे २ सितम्बर २०१८ तक) आयोजित दिल्ली पुस्तक-मेलामें गीताप्रेसद्वारा एक भव्य पुस्तक-स्टॉल लगाकर विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित अपने प्रकाशनोंके प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था करनेका प्रयास है।

**खुल गया है—दमदम (कोलकाता) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं० २-३ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल**